श्री महावीराय नमः
श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः
नाणस्स सव्वस्स पगासणाए
(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जय गुरु हीरा

जय गुरु मान

जैनागम स्तोक वारिधि

तृतीय कक्षा

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :
सामायिक स्वाध्याय भवन
प्लॉट नं. 2, नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)
फोन : 0291-2630490, 2636763, WhatsApp No. 7610953735
email: shikshanboardjodhpur@gmail.com
website : www.jainratnaboard.com

नव तत्त्व का थोकड़ा

नव तत्त्वों के नाम- जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

नव तत्त्वों का स्वरूप

1. जीव तत्त्व- **जिसमें चेतना शक्ति यानी ज्ञान हो, उसे जीव तत्त्व कहते हैं। जीव सुख-दुःख को जानता है और सुख-दुःख को भोगता है। सांसारिक जीव में पर्याप्ति, प्राण, गुणस्थान, योग तथा उपयोग होते हैं। यह आठ कर्मो का कर्त्ता और पुण्य पाप का भोक्ता है। जीव भूतकाल में जीव था, वर्तमान में जीव है और भविष्यत्काल में जीव रहेगा। जीव कभी अजीव नहीं होता।**

2. अजीव तत्त्व- **जो सर्वथा चेतना शून्य-जड़ हो, उसे अजीव तत्त्व कहते हैं। अजीव सुख-दुःख को नहीं जानता, न सुख-दुःख को भोगता ही है। अजीव में पर्याप्ति, प्राण, गुणस्थान, योग और उपयोग नहीं होते। अजीव आठ कर्मों का अकर्त्ता है और पुण्य पाप का अभोक्ता है। अजीव भूतकाल में अजीव था, वर्तमान में अजीव है और भविष्यत्काल में अजीव रहेगा। अजीव कभी जीव नहीं होता।**

3. पुण्य तत्त्व- **जो आत्मा को पवित्र करे, जिसके कारण साता रूप सुख की प्राप्ति हो, उसे पुण्य तत्त्व कहते हैं। पुण्य शुभ प्रकृति रूप है और शुभ योगों से बंधता है। पुण्य का फल मीठा है और सुखपूर्वक भोगा जाता है। पुण्य का बाँधना कठिन है और भोगना सहज है। पुण्य आत्मा को धर्म करणी के अनुकूल सहायक सामग्री प्रदान करता है। पुण्य सोने के आभूषणों के समान है।**

4. पाप तत्त्व- **जो आत्मा को नीचे गिरावे, आत्मा को मलिन करे, जिसके कारण दुःख की प्राप्ति हो, उसे पाप तत्त्व कहते हैं। पाप अशुभ प्रकृति रूप है और अशुभ योगों से बँधता है। पाप का फल कड़वा है, दुःख पूर्वक भोगा जाता है। पाप बाँधते समय अच्छा लगता है, किन्तु भोगते समय बहुत बुरा लगता है। पाप आत्मा को दुःखी बनाता है। पाप बेड़ी के समान बन्धनकारक है।**

5. आश्रव तत्त्व- **जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ अशुभ कर्म आते हैं, उसे आश्रव तत्त्व कहते हैं। जीव रूपी तालाब में कर्म रूपी पानी आश्रव रूपी नालों द्वारा आता है।**

6. संवर तत्त्व- **जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभ कर्मों का आना रुकता है, उसे संवर तत्त्व कहते हैं। जीव रूपी तालाब में आश्रव रूप नालों द्वारा आता हुआ कर्म रूपी पानी सम्यक्त्व-व्रत-प्रत्याख्यानादि रूप पाल द्वारा रुकता है।**

7. निर्जरा तत्त्व- **क्षीर नीर की तरह आत्मा के साथ एक रूप हुए कर्म पुद्गल जिस क्रिया द्वारा आंशिक रूप से क्षय किये जाये यानी आत्मा से अलग किये जाये, उसे निर्जरा तत्त्व कहते हैं। जीव रूपी कपड़ा कर्म रूपी मैल से मलिन है, उसे ज्ञान रूपी जल, शील-संयम रूपी साबुन एवं तप रूपी अग्नि द्वारा निर्मल करना निर्जरा है।**

8. बंध तत्त्व- आश्रव द्वारा आये हुए कर्म पुद्गलों का आत्मा से पूर्वबद्ध कर्मों के साथ दूध-मिश्री की तरह अथवा लोहपिण्ड- अग्नि की तरह एक रूप हो जाना बंध तत्त्व कहलाता है। योग और कषाय, कर्म बंध के कारण हैं।

9. मोक्ष तत्त्व- निर्जरा द्वारा आठ कर्मों का क्षय हो जाने पर यानी आत्मा से सम्पूर्ण कर्मों के अलग हो जाने पर आत्मा का सदा के लिये अपने स्वरूप में स्थित हो जाना मोक्ष तत्त्व कहलाता है।

इन नौ तत्त्वों में से दो तत्त्व- जीव, अजीव जानने योग्य हैं, तीन तत्त्व- पाप, आश्रव और बंध छोड़ने योग्य हैं और चार तत्त्व- पुण्य, संवर, निर्जरा और मोक्ष ग्रहण करने योग्य हैं।

नव तत्त्वों में पुण्य, पाप, आश्रव और बंध ये चार रूपी हैं। जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये चार अरूपी हैं। अजीव पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा रूपी है और धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल की अपेक्षा अरूपी है।

नव तत्त्वों में एक जीव, एक अजीव और सात तत्त्व जीव अजीव की पर्याय रूप हैं अर्थात् जीव अजीव के कारण से ये सातों तत्त्व होते हैं।

जीव तत्त्व

निश्चय में जीव का भेद एक ही है। व्यवहार में जीवों के दो से चौदह तक तथा 563 भेद होते हैं।

जीव का एक भेद- उपयोग लक्षण। जीव के दो भेद- त्रस और स्थावर। जीव के तीन भेद- स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद। जीव के चार भेद- नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवता। जीव के पाँच भेद- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। जीव के छः भेद- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय (तेजस्काय), वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। जीव के सात भेद- नरक, देव, देवी, तिर्यंच, तिर्यंचिणी मनुष्य और मनुष्यिणी। जीव के आठ भेद- चार गति- नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव का पर्याप्त और अपर्याप्त। जीव के नौ भेद- पाँच स्थावर- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और चार त्रस- बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। जीव के दस भेद- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, इन पाँच के पर्याप्त और अपर्याप्त। जीव के ग्यारह भेद- एकेन्द्रिय आदि पाँच के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दस और ग्यारहवाँ अणिंदिया (अनिन्द्रिय)। जीव के बारह भेद- पृथ्वीकाय आदि छह का पर्याप्त और अपर्याप्त। जीव के तेरह भेद- छह काय का पर्याप्त और अपर्याप्त ये बारह और तेरहवाँ अकाइया (सिद्ध भगवान्)। जीव के चौदह भेद- सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय- इन सात के पर्याप्त और अपर्याप्त।

जीव के 563 भेद- चौदह नारकी, अड़तालीस तिर्यंच, तीन सौ तीन मनुष्य और एक सौ

अट्ठाणु देवता।

नारकी के चौदह भेद

सात नारकी के नाम- घम्मा, वंसा, सीला, अंजणा, रिट्ठा, मघा और माघवई। सात नारकी के गोत्र-रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और तमतमाप्रभा (तमस्तमा प्रभा)।

इन सात नारकी के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से चौदह भेद होते हैं।

तिर्यंच के अड़तालीस भेद

पृथ्वीकाय के दो भेद- सूक्ष्म और बादर, इन दोनों के दो-दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। इस तरह पृथ्वीकाय के चार भेद हुए।

बादर पृथ्वीकाय के मुरड़, मिट्टी, खड़िया मिट्टी (हिंगलू), हरताल, हड़मची, भोडल, गेरू, सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा, मणि, रत्न आदि अनेक भेद हैं। पृथ्वीकाय का वर्ण पीला, स्वभाव कठोर, संठाण मसूर की दाल के आकार के समान है। एक छोटे से कंकर में असंख्याता पृथ्वीकाय के जीव होते हैं। एक पर्याप्त के नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

'सूक्ष्म' नाम कर्म के उदय से पृथ्वीकाय के जिन जीवों का शरीर अत्यन्त सूक्ष्म हों, वे सूक्ष्म पृथ्वीकाय कहलाते हैं। असंख्यात सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर इकट्ठे हो जाने पर भी ये छद्मस्थ को दिखाई नहीं देते। परमावधिज्ञानी और केवल ज्ञानी ही इन जीवों को देख सकते हैं। इन सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीवों का छेदन-भेदन नहीं होता। अग्नि इन्हें जला नहीं सकती। इन जीवों को किसी से उपघात नहीं होता और न ये किसी जीव को उपघात पहुँचाते हैं। सारे लोकाकाश में ये जीव काजल की कुप्पी के समान ठूँस-ठूँस कर भरे हुए हैं। इसी तरह सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेउकाय, सूक्ष्म वायुकाय और सूक्ष्म वनस्पतिकाय का स्वरूप जानना।

'बादर' नाम कर्म के उदय से पृथ्वीकाय के जिन जीवों को स्थूल शरीर प्राप्त होता है, वे बादर पृथ्वीकाय कहलाते हैं। असंख्य पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर इकट्ठे होने पर ये दिखाई देते हैं। इनका छेदन-भेदन आदि होता है। ये लोक के एक देश में रहे हुए हैं। इसी तरह बादर अप्काय, बादर तेउकाय, बादर वायुकाय और बादर वनस्पतिकाय का स्वरूप जानना। बादर वायुकाय के असंख्य जीवों के शरीर इकट्ठे होने पर उनका स्पर्श द्वारा ज्ञान होता है। वनस्पतिकाय के एक तथा अनेक जीवों का शरीर दिखाई देता है।

अप्काय के दो भेद- सूक्ष्म और बादर। पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से दोनों के दो-दो भेद होते हैं। इस तरह अप्काय के चार भेद हुए।

बादर अप्काय के ओस,, कुहरा, बर्फ, ओला, वर्षा का पानी, कुवा, बावड़ी, तालाब का पानी आदि अनेक भेद हैं। अप्काय का वर्ण लाल, स्वभाव ढीला और संठाण पानी के बुलबुले (बुद-बुद) के आकार के समान है। एक पानी की बूँद में असंख्याता जीव होते हैं। एक पर्याप्त की नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

तेऊकाय के दो भेद- सूक्ष्म और बादर। दोनों के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से दो-दो भेद होते हैं। इस तरह तेऊकाय के चार भेद हुए।

बादर तेऊकाय के इंगाल (अंगारा), ज्वाला, भोभर, उल्कापात, विद्युत्, वड़वाग्नि, काष्ट की अग्नि, पाषाण की अग्नि आदि अनेक भेद हैं। तेऊकाय का वर्ण सफेद, स्वभाव उष्ण और संठाण सूई की भारी के आकार के समान है। एक चिनगारी में तेऊकाय के असंख्याता जीव होते हैं। एक पर्याप्त की नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

वायुकाय के दो भेद- सूक्ष्म और बादर। दोनों के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से दो-दो भेद होते हैं। इस तरह वायुकाय के चार भेद होते हैं।

बादर वायुकाय के उक्कलियावाय, मण्डलियावाय, घनवाय, गुंजावाय, संवर्तक वाय, शुद्धवाय आदि अनेक भेद हैं। वायुकाय का वर्ण नीला है, स्वभाव चलना है और संठाण पताका के आकार के समान है। एक फूँक प्रमाण सचित्त वायु में वायुकाय के असंख्याता जीव होते हैं। एक पर्याप्त की नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं। लोकाकाश के छिद्रों में, यानी जहाँ भी लोकाकाश खाली है, वहाँ वायुकाय के जीव रहते हैं।

वनस्पतिकाय के छह भेद- मुख्य भेद २-सूक्ष्म और बादर। बादर वनस्पतिकाय के दो भेद- प्रत्येक और साधारण। इन तीनों सूक्ष्म, प्रत्येक और साधारण के पर्याप्त अपर्याप्त के दो-दो भेद होते हैं। इस प्रकार वनस्पतिकाय के छः भेद हुए।

प्रत्येक वनस्पति के बारह भेद- रूक्खा (वृक्ष), गुच्छा, गुम्मा (गुल्म), लया, वल्ली, पव्वगा, तणा, वलया, हरिय (हरित), ओसहि (औषधि), जलरूहा, कुहणा।

साधारण वनस्पति- जिन जीवों के साधारण शरीर होता है, यानी एक औदारिक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं, उसे साधारण वनस्पति कहते हैं। साधारण वनस्पति के अनेक प्रकार हैं जैसे- प्याज, लहसुन, आलू, रतालू, पिंडालू, गाजर, मूला, शलगम, हल्दी, अदरख आदि। वनस्पतिकाय का वर्ण काला होता है। स्वभाव और संठाण नाना प्रकार के होते हैं।

बेइन्द्रिय के दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। बेइन्द्रिय (द्वीन्द्रिय)- जिसके स्पर्शन इन्द्रिय और रसना इन्द्रिय, ये दो इन्द्रिय हों, उसे बेइन्द्रिय कहते हैं। बेइन्द्रिय के दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। शंख, कोडी, शीप, जोक (जलोक), लट, कृमि, कोड़ा, खपरीया, अलसिया, चूरणिया, नाहरू (वाला) आदि बेइन्द्रिय के अनेक प्रकार हैं।

तेइन्द्रिय के दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। तेइन्द्रिय (त्रीन्द्रिय)- जिसके स्पर्शन, रसना और घ्राण- ये तीन इन्द्रिय हों, उसे तेइन्द्रिय कहते हैं। तेइन्द्रिय के दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। जूँ, लीख, कीड़ी, मकोड़ी, कुंथुवा, कानसलावा, खटमल, धनेरिया, उदई आदि तेइन्द्रिय जीवों के अनेक प्रकार हैं।

चौरेन्द्रिय के दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। चौरेन्द्रिय (चतुरिन्द्रिय)- जिसके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु- ये चार इन्द्रिय हों, उसे चौरेन्द्रिय कहते हैं। चौरेन्द्रिय के दो भेद- पर्याप्त

और अपर्याप्त। मक्खी, मच्छर, टीड, पतंगिया, करोड़िया, कसारी, भँवरा, बिच्छू आदि चौरेन्द्रिय जीव के अनेक प्रकार हैं।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प। इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और (श्रोत्र) कान- ये पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं।

जलचर- पानी में चलने वाले जलचर कहलाते हैं। जलचर के पाँच भेद हैं- मच्छ, कच्छप, ग्राह, मगर और सुंसुमार। इन पाँचों भेदों में सभी जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों का समावेश हो जाता है।

स्थलचर- जमीन पर चलने वाले स्थलचर कहलाते हैं। स्थलचर के चार भेद हैं- एगखुरा, बिखुरा, गंडीपया, सण्णपया (सनखपद)। एगखुरा- एक खुर वाले, जैसे- घोड़ा, गधा आदि। बिखुरा- दो खुर वाले, जैसे- गाय, भैंस, बकरी, ऊँट आदि। गंडीपया- सुनार की एरण के समान गोल पैर वाले, जैसे- हाथी, गैंडा आदि। सण्णपया- नख सहित पंजे वाले, जैसे- सिंह, चीता, बिल्ली, कुत्ता आदि।

खेचर- आकाश में उड़ने वाले पक्षी। इनके चार भेद- चर्मपक्षी, रोमपक्षी, समुग्ग पक्षी, वितत पक्षी। चर्म पक्षी- चर्म के पंख वाले। जैसे- चिमगादड़, भारंड पक्षी, समुद्र-वायस आदि। रोमपक्षी- रूँओं के पंखवाले। जैसे- चिड़ियाँ, कबूतर, मोर, तोता, मैना, हंस, कौवा आदि। समुग्ग पक्षी- जिनके पंख हमेशा डिब्बे की तरह बंद रहते हैं। वितत पक्षी- जिनके पंख हमेशा खुले-फैले हुए रहते हैं। समुग्ग पक्षी और वितत पक्षी ढ़ाई द्वीप में नहीं होते। ये ढ़ाई द्वीप के बाहर होते हैं।

उरपरिसर्प- छाती से चलने वाली सर्प जाति। उरपरिसर्प चार प्रकार के होते हैं- अहि, अजगर, असालिया, महोरग। अहि सर्प के दो भेद- फण करने वाले और फण नहीं करने वाले। अजगर- जो मनुष्य आदि को निगल जाता है। असालिया - यह चक्रवर्ती आदि की राजधानी अथवा नगर आदि की खाल (गटर) के नीचे पैदा होता है। अन्तर्मुहूर्त में बारह योजन लम्बा हो जाता है। इसे भस्म दाह होता है। यह बारह योजन की मिट्टी खा जाता है। चक्रवर्ती आदि की सेना तथा गाँव नगर आदि का नाश कर देता है। यह असंज्ञी होता है। इसकी आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। महोरग- महोरग जाति का सर्प ढ़ाई द्वीप के बाहर होता है। यह अंगुल- प्रत्येक अंगुल से लेकर एक हजार योजन प्रमाण होता है। यह सर्प जल और स्थल दोनों जगह रहता है।

भुजपरिसर्प- भुजा से चलने वाले। जैसे- कोल, नेवला, चूहा, छिपकली, गिलहरी, गोह आदि।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प, इनके सन्नी और असन्नी के भेद से दस भेद होते हैं। इन दस के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से बीस भेद होते हैं। एकेन्द्रिय के 22, तीन विकलेन्द्रिय के 6, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 20, कुल मिलाकर तिर्यंच के अड़तालीस भेद हुए।

मनुष्य के 303 भेद

मनुष्य के दो भेद- गर्भज और सम्मूर्छिम। गर्भज के तीन भेद- कर्मभूमि, अकर्मभूमि और अन्तर् द्वीपा।

कर्मभूमि- जहाँ मनुष्य असि, मषी, कृषि द्वारा आजीविका करते हैं। जहाँ राजा-रानी हैं, राजा-रानी की आज्ञा चलती है। जहाँ लेना लेते हैं, देना देते हैं, विवाह-शादी होती हैं। जहाँ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थ हैं। जहाँ मनुष्य मोक्ष के लिये क्रिया करते हैं। इस प्रकार की कर्म-प्रधान भूमि कर्म भूमि कहलाती है। कर्मभूमि में तीर्थंकर, विहरमान, गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, साध्वी, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि होते हैं। कर्मभूमि के पन्द्रह क्षेत्र हैं- पाँच भरत, पाँच ऐरवत, पाँच महाविदेह। इन पाँच-पाँच भेदों में से एक-एक भेद जम्बूद्वीप में, दो-दो धातकी खण्ड में तथा दो-दो अर्ध पुष्करद्वीप में है।

अकर्मभूमि- जहाँ असि, मषी, कृषि, वाणिज्य द्वारा आजीविका नहीं करते हैं। जहाँ खेत, सेत, अभयखेत नहीं हैं। जहाँ न राजा-रानी हैं और न उनकी आज्ञा ही चलती है। जहाँ लेने-देने का व्यवहार नहीं है। जहाँ विवाह-शादी नहीं होती। जहाँ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थ नहीं हैं। जहाँ तीर्थंकर, विहरमान, गणधर आदि नहीं हैं तथा चक्रवर्ती बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि भी नहीं हैं। जहाँ दस जाति के कल्पवृक्ष मनुष्यों की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं, उसे अकर्मभूमि कहते हैं। अकर्मभूमि के तीस क्षेत्र हैं- 5 देवकुरू, 5 उत्तरकुरू, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 हेमवय, 5 ऐरण्यवय। इन पाँच-पाँच भेदों में से एक-एक जम्बूद्वीप में, दो-दो भेद धातकी खण्ड में तथा दो-दो भेद अर्ध पुष्करद्वीप में है। इन तीस क्षेत्रों में अकर्मभूमि के मनुष्य रहते हैं।

छप्पन अन्तर्द्वीपा- जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला चूल हेमवंत पर्वत है और जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला शिखरी पर्वत है। इन पर्वतों में से प्रत्येक पर्वत के पूर्व पश्चिम की ओर लवण समुद्र में चारों विदिशाओं में सात-सात अन्तर्द्वीपा हैं जो दाढ़ाओं के आकार वाले हैं। इस प्रकार एक पर्वत के दोनों ओर अट्ठाईस अन्तर्द्वीपा हैं और दोनों पर्वतों के मिलाकर छप्पन अन्तर्द्वीपा हैं।

इन अन्तर्द्वीपों में युगलिक मनुष्य रहते हैं। दस जाति के कल्पवृक्षों से इनकी आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं। ये एकान्त मिथ्यादृष्टि होते हैं। फिर भी अल्प कषायी होने से मरकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

पन्द्रह कर्मभूमि, तीस अकर्मभूमि, छप्पन अन्तर्द्वीपा- ये मनुष्य के 101 भेद हुए। पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से 202 भेद हुए।

पन्द्रह कर्मभूमि, तीस अकर्मभूमि और छप्पन अन्तर्द्वीपा- इन 101 गर्भज मनुष्यों के चौदह अशुचि स्थानों में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य भी 101 प्रकार के होते हैं। चौदह अशुचि स्थान ये हैं- (1) उच्चारेसु वा- बड़ीनीत (विष्ठा-मल) में। (2) पासवणेसु वा-लघुनीत (पिशाब) में। (3) खेलेसु वा-कफ-बलगम में। (4) सिंघाणेसु वा-नाक के मेल (सेडे) में। (5) वंतेसु वा-वमन में।

(6) पित्तेसु वा-पित्त में। (7) पूएसु वा-राध में। (8) सोणियेसु वा-रूधिर में। (9) सुक्केसु वा-शुक्र-वीर्य में। (10) सुक्क पुग्गल परिसाडेसु वा-सूखे हुए वीर्य पुद्गलों के वापिस गीले होने पर। (11) विगय जीव कलेवरेसु वा-मनुष्य के मृत कलेवर में। (12) इत्थी पुरिस संजोएसु वा-स्त्री पुरुष के संयोग में। (13) णगर णिद्धमणेसु वा-नगर की खाल- नाली गटर में। (14) सव्वेसु असुइट्ठाणेसु वा- सभी अशुचि स्थानों में- यानी उपर्युक्त तेरह स्थानों में से दो तीन चार आदि स्थान इकट्ठे होने पर उनमें जो सम्मूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं।

ये सम्मूर्छिम मनुष्य उपर्युक्त चौदह स्थानों में अन्तर्मुहूर्त में उत्पन्न होते हैं। इनकी अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण होती है। आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। ये असंज्ञी मिथ्यादृष्टि होते हैं एवं अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं।

उपर्युक्त 202 गर्भज मनुष्य और 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के मिलाकर मनुष्य के 303 भेद हुए।

देवता के 198 भेद

दस भवनपति, पन्द्रह परमाधामी (परमाधार्मिक), सोलह वाणव्यंतर, दस त्रिजृम्भक, दस ज्योतिषी, तीन किल्विषी, बारह देवलोक, नव लोकांतिक, नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान- ये देवता के 99 भेद हैं, इनके नाम इस प्रकार हैं-

दस भवनपति- असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार, स्तनितकुमार।

पन्द्रह परमाधामी- अम्ब, अम्बरीष, श्याम, शबल, रौद्र, महारौद्र, काल, महाकाल, असिपत्र, धनु, कुम्भ, वालुय, वैतरणी, खरस्वर, महाघोष।

सोलह वाणव्यन्तर- पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गंधर्व, आणपन्ने, पाणपन्ने, इसिवाई, भूयवाई, कन्दे, महाकन्दे, कुहण्डे और पयंगदेवे।

दस त्रिजृम्भक- अन्न जृम्भक, पान जृम्भक, लयन जृम्भक, शयन जृम्भक, वस्त्र जृम्भक, फल जृम्भक, पुष्प जृम्भक, फल-पुष्प जृम्भक, विद्या जृम्भक और अग्नि जृम्भक।

दस ज्योतिषी- चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा, ये पाँच ज्योतिषी हैं। ये पाँच चर और पाँच अचर (स्थिर)- इस प्रकार ज्योतिषी के दस भेद होते हैं। चर ज्योतिषी ढाई द्वीप के अन्दर हैं और पूर्ण ज्योति तथा कांति वाले हैं। अचर ज्योतिषी ढाई द्वीप के बाहर है, जिनकी ज्योति और कांति चर की अपेक्षा आधी है।

तीन किल्विषी- तीन पलिया (तीन पल्योपम की स्थिति वाले), तीन सागरिया (तीन सागरोपम की स्थिति वाले) और तेरह सागरिया (तेरह सागरोपम की स्थिति वाले), तीन पलिया किल्विषी देव पहले दूसरे देवलोक के नीचे रहते हैं। तीन सागरिया किल्विषी देव, तीसरे चौथे देवलोक के नीचे रहते हैं। तेरह सागरिया किल्विषी देव पाँचवे देवलोक के ऊपर और छठे देवलोक के नीचे रहते हैं।

बारह देवलोक- सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतक, महाशुक्र, सहस्रार,

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक।

नव लोकांतिक- **सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरूण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय और अरिष्ट।**

नव ग्रैवेयक- **भद्र, सुभद्र, सुजात, सुमनस, सुदर्शन, प्रियदर्शन, आमोह, सुप्रतिबद्ध और यशोधर।**

पाँच अनुत्तर विमान- **विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध।**

देवता के उपर्युक्त 99 भेद हुए। ये 99 पर्याप्त और 99 अपर्याप्त, इस प्रकार देवता के कुल 198 भेद हुए।

अजीव तत्त्व

अजीव के जघन्य चौदह भेद, उत्कृष्ट 560 भेद होते हैं। अजीव के चौदह भेद हैं- धर्मास्तिकाय के तीन भेद- स्कन्ध, देश, प्रदेश। अधर्मास्तिकाय के तीन भेद- स्कन्ध, देश, प्रदेश। आकाशास्तिकाय के तीन भेद- स्कन्ध, देश, प्रदेश। दसवाँ काल। पुद्गलास्तिकाय के चार भेद- स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु पुद्गल। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल के दस भेद अरूपी हैं। पुद्गलास्तिकाय के चारों भेद रूपी हैं।

अजीव के 560 भेद- **अरूपी अजीव के 30 भेद और रूपी अजीव के 530 भेद।**

अरूपी अजीव के 30 भेद- **धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के तीन-तीन भेद हैं- स्कन्ध, देश और प्रदेश। दसवाँ काल। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल- ये चारों द्रव्य- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण- इन पाँच-पाँच बोलें से जाने जाते हैं। अतः चारों के बीस भेद हुए। उपर्युक्त दस और ये बीस मिलाकर अरूपी अजीव के तीस भेद होते हैं।**

रूपी अजीव के 530 भेद इस प्रकार हैं- **वर्ण के पाँच भेद- काला, नीला, लाल, पीला और सफेद। गन्ध के दो भेद- सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध। रस के पाँच भेद- तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा। स्पर्श के आठ भेद- खुरदरा (कर्कश), सुहाला (मृदु) हल्का, भारी, शीत, उष्ण, लूखा (रूक्ष) और चौपड़िया (स्निग्ध)। संस्थान के पाँच भेद- परिमण्डल, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और आयत।**

वर्ण के 100 भेद- **काला का किया भाजन, चार का किया प्रतिपक्ष- बोल पावे बीस- दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श और पाँच संस्थान। इसी प्रकार नीला, लाल, पीला, सफेद प्रत्येक में 20-20 बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार वर्ण के 100 भेद हुए।**

गन्ध के 46 भेद- **सुरभिगन्ध का किया भाजन और दुरभिगन्ध का किया प्रतिपक्ष। बोल पावे 23- पाँच वर्ण, पाँच रस, आठ स्पर्श और पाँच संस्थान। इसी तरह दुरभिगन्ध में भी 23 बोल पाते हैं। इस प्रकार गन्ध के 46 भेद हुए।**

रस के 100 भेद- तीखा का किया भाजन, चार का किया प्रतिपक्ष, बोल पावे बीस- पाँच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श, पाँच संस्थान। इसी तरह कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा प्रत्येक में बीस-बीस बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार रस के 100 भेद हुए।

स्पर्श के 184 भेद- खुरदरा का किया भाजन, सुहाला का किया प्रतिपक्ष, बोल पावे तेईस- पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, 6 स्पर्श (खुरदरा और सुहाला के सिवाय) और पाँच संस्थान। इसी तरह सुहाला में भी तेईस बोल पाये जाते हैं। दोनों के 46 भेद होते हैं। इसी तरह हल्का और भारी के 46 भेद, शीत और उष्ण के 46 भेद और लुखा और चौपड़िया के 46 भेद होते हैं। इस प्रकार आठ स्पर्श के 184 भेद हुए।

संस्थान के 100 भेद- परिमण्डल का किया भाजन, चार का किया प्रतिपक्ष- बोल पावे बीस- पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श। इसी प्रकार वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और आयत, प्रत्येक में बीस-बीस बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार संस्थान के 100 भेद हुए।

इस प्रकार रूपी अजीव के 100+46+100+184+ 100= 530 भेद हुए। अरूपी अजीव के 30 और रूपी अजीव के 530 कुल मिलाकर अजीव के 560 भेद हुए।

पुण्य तत्त्व

पुण्य नौ प्रकार से बन्धता है और बयालीस प्रकार से भोगा जाता है।

(1) अन्न पुण्य- अन्न देने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (2) पान पुण्य- पानी पिलाने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (3) लयन पुण्य- जगह-मकान देने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (4) शयन पुण्य- शय्या-पाट-पाटला आदि देने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (5) वस्त्र पुण्य- कपड़ा देने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (6) मन पुण्य- मन का शुभ योग प्रवर्ताने से- शुभ चिन्तन करने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (7) वचन पुण्य- वचन का शुभयोग प्रवर्ताने से- शुभ, हितकारी, मधुर वचन बोलने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (8) काय पुण्य- शरीर द्वारा दूसरों की सहायता करने, सुख उपजाने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (9) नमस्कार पुण्य- गुणवानों को नमस्कार करने से, उनका विनय करने से पुण्य प्रकृति बन्धती है।

पुण्य भोगने की 42 प्रकृतियाँ हैं। ये चार अघाती कर्मों के उदय होने से भोगी जाती हैं। वेदनीय कर्म के उदय से एक- साता वेदनीय। आयु कर्म के उदय से तीन- देवायु, मनुष्यायु तिर्यंचायु। गोत्र कर्म के उदय से एक- उच्च गोत्र। नाम कर्म के उदय से 37- (1) मनुष्य गति, (2) देव गति, (3) पंचेन्द्रिय जाति (4-8) पाँच शरीर- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस्, कार्मण (9-11) तीन अंगोपांग- औदारिक अंगोपांग, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक अंगोपांग (12) वज्र ऋषभ नाराच संहनन (13) समचतुरस्र संस्थान (14) शुभ वर्ण (15) शुभ गन्ध (16) शुभ रस (17) शुभ स्पर्श (18-19) दो आनुपूर्वी- देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी (20) शुभ विहायोगति (21-30) त्रस

दशक- त्रस नाम, बादर नाम, पर्याप्त नाम, प्रत्येक नाम, स्थिर नाम, शुभ नाम, सुभग नाम, सुस्वर नाम, आदेय नाम, यशः कीर्ति नाम। (31) अगुरुलघु नाम (32) पराघात नाम (33) आतप नाम (34) उद्योत नाम (35) श्वासोच्छ्वास नाम (36) निर्माण नाम (37) तीर्थंकर नाम। इस प्रकार 1+3+1+37= 42 पुण्य प्रकृतियाँ हुईं।

पाप तत्व

पाप अठारह प्रकार से बंधता है और 82 प्रकार से भोगा जाता है। पाप बांधने के अठारह प्रकार- (1) प्राणातिपात- जीवों की हिंसा करना- जीवों को दुःख पहुँचाना (2) मृषावाद- असत्य- झूठ बोलना (3) अदत्तादान- चोरी करना, (4) मैथुन- कुशील सेवन करना- ब्रह्मचर्य का पालन न करना, (5) परिग्रह- धन-धान्य आदि का संग्रह करना और उसमें ममत्व- मूर्च्छा (आसक्ति) रखना (6) क्रोध- गुस्सा करना- शान्ति न रखना (7) मान- अहंकार करना- चित्त की कोमलता और विनय का अभाव (8) माया- कपट करना- ऋजुता- सरलता न रखना (9) लोभ- तृष्णा- लालच- धन्य-धान्यादि में गृद्धि, प्राप्त वस्तु में आसक्ति भाव रखना (10) राग-मनोज्ञ वस्तु में स्नेह रखना- माया और लोभ से राग उत्पन्न होता है (11) द्वेष करना- अमनोज्ञ वस्तु आदि में द्वेष रखना। क्रोध और मान से द्वेष उत्पन्न होता है (12) कलह-क्लेश-झगड़ा करना (13) अभ्याख्यान- किसी पर झूठा दोष लगाना, कलंक देना (14) पैशुन्य-चुगली करना- किसी के दोष प्रकट करना। (15) परपरिवाद- दूसरे की निन्दा बुराई करना (16) रति-अरति- पाप कर्मों में चित्त लगाना- रुचि रखना और संयम-तप आदि धर्म कार्यों में अरुचि रखना अथवा इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय पाकर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ विषय पाकर खिन्न होना (17) माया मृषावाद-कपट सहित झूठ बोलना (18) मिथ्या दर्शनशल्य-तत्त्व को अतत्त्व मानना और अतत्त्व को तत्त्व मानना। कुदेव, कुगुरू और कुधर्म पर श्रद्धा रखना- सुदेव, सुगुरू, सुधर्म की श्रद्धा न रखना यानी श्रद्धा का विपरीत होना।

पाप कर्म भोगने की 82 प्रकृतियाँ हैं, जो आठ कर्मों के उदय में आने से भोगी जाती हैं। 82 प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं- (1-5) ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से पाँच प्रकृतियाँ- मतिज्ञानावरणीय, श्रुत ज्ञानावरणीय, अवधि ज्ञानावरणीय, मनःपर्याय ज्ञानावरणीय, केवल ज्ञानावरणीय (6-14) दर्शनावरणीय कर्म के उदय से नौ प्रकृतियाँ- चक्षु दर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, केवल दर्शनावरणीय, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला- प्रचला, स्त्यानर्द्धि। (15) वेदनीय कर्म के उदय से एक प्रकृति- असाता वेदनीय (16-41) मोहनीय कर्म के उदय से 26 प्रकृतियाँ- मिथ्यात्व मोहनीय, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ। हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद (42) आयुकर्म कर्म के उदय से एक प्रकृति- नरकायु (43-76) नाम कर्म के उदय से 34 प्रकृतियाँ- दो गति- नरक गति, तिर्यंच गति, चार जाति- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पाँच संहनन- ऋषभ नाराच, नाराच,

अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त पाँच संठाण- न्यग्रोध परिमण्डल संठाण, सादि संठाण, वामन संठाण, कुब्जक संठाण, हुण्डक संठाण, अशुभ वर्ण, अशुभ गन्ध, अशुभ रस, अशुभ स्पर्श, दो आनुपूर्वी- नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, अशुभ विहायोगति, उपघात नाम, स्थावरदशक- स्थावर नाम, सूक्ष्म नाम, अपर्याप्त नाम, साधारण नाम, अस्थिर नाम, अशुभ नाम, दुर्भग नाम, दुःस्वर नाम, अनादेय नाम, अयशः कीर्ति नाम, (77) गोत्र कर्म के उदय से एक प्रकृति- नीच गोत्र, (78-82) अन्तराय कर्म के उदय से पाँच प्रकृतियाँ- दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय। इस तरह पाप कर्म भोगने की 5+9+1+26+ 1+34+1+5= 82 प्रकृतियाँ हुईं।

आश्रव तत्त्व

आश्रव के जघन्य पाँच भेद, मध्यम 20 भेद और उत्कृष्ट 42 भेद हैं।

आश्रव के 5 भेद- मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, और अशुभ योग।

आश्रव के 20 भेद- (1) मिथ्यात्व- मिथ्यात्व सेवे, विपरीत श्रद्धा रखे तो आश्रव (2) अव्रत- व्रत प्रत्याख्यान धारण नहीं करे तो आश्रव (3) प्रमाद- पाँच प्रमाद- मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा का सेवन करे तो आश्रव (4) कषाय- पचीस कषाय का सेवन करे तो आश्रव (5) अशुभयोग- मन, वचन, काया को अशुभ व्यापार में लगावे तो आश्रव (6) प्राणातिपात- जीव हिंसा करे तो आश्रव (7) मृषावाद- झूठ बोले तो आश्रव। (8) अदत्तादान- चोरी करे- स्वामी की आज्ञा बिना, उसकी वस्तु बिना दिये ग्रहण करे तो आश्रव (9) मैथुन- कुशील सेवन करे तो आश्रव (10) परिग्रह- धन-धान्यादि द्रव्य रखे, उनमें ममत्व- आसक्ति रखे तो आश्रव (11-15) श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय वश में न रखे तो आश्रव (16) मन वश में न रखे तो आश्रव (17) वचन वश में न रखे तो आश्रव (18) काया वश में न रखे तो आश्रव (19) भण्ड उपकरण अयतना से लेवे, अयतना से रखे तो आश्रव (20) सूई कुशाग्र मात्र अयतना से लेवे और अयतना से रखे तो आश्रव।

आश्रव के 42 भेद- (1-5) पाँच अव्रत- प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह का त्याग न करना (6-10) पाँच इन्द्रिय- श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय को वश में न रखना- इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों पर राग और अमनोज्ञ विषयों पर द्वेष रखना (11-14) चार कषाय- क्रोध, मान, माया, लोभ का सेवन करना (15-17) तीन योग- मन, वचन, काया को अशुभ व्यापार में लगाना (18-42) पच्चीस क्रियाओं का सेवना करना।

पच्चीस क्रियाएँ इस प्रकार हैं-

(1) काइया- शरीर के अशुभ योगों से लगने वाली क्रिया।
(2) अहिगरणिया-शस्त्र आदि से लगने वाली क्रिया।
(3) पाओसिया-द्वेष भाव रखने से लगने वाली क्रिया।

(4) परियावणिया- दुःख उपजाने से लगने वाली क्रिया।
(5) पाणाइवाइया- प्राणों का विनाश करने से लगने वाली क्रिया।
(6) आरम्भिया-छह काय के जीवों की विराधना से लगने वाली क्रिया।
(7) परिग्गहिया-धन-धान्यादि पर मूर्च्छा भाव रखने से लगने वाली क्रिया।
(8) मायावत्तिया- छल-कपट करने से लगने वाली क्रिया।
(9) अपच्चक्खाणकिरिया-व्रत-प्रत्याख्यान नहीं करने से लगने वाली क्रिया।
(10) मिच्छादंसणवत्तिया-मिथ्यादर्शन के कारण से लगने वाली क्रिया।
(11) दिट्ठिया-राग-द्वेष पूर्वक वस्तुओं को देखने से लगने वाली क्रिया।
(12) पुट्ठिया-राग-द्वेष पूर्वक वस्तुओं को स्पर्श करने से लगने वाली क्रिया।
(13) पाडुच्चिया-राग-द्वेषादि की उत्पत्ति होने से लगने वाली क्रिया।
(14) सामन्तोवणिवाइया-घी-तेल आदि के पात्र खुले रखने से लगने वाली क्रिया।
(15) साहत्थिया-अपने हाथों से जीवों को मारने अथवा ताड़ना करने से लगने वाली क्रिया।
(16) णेसत्थिया-किसी भी वस्तु आदि को फैंकने-छोड़ने से लगने वाली क्रिया।
(17) आणवणिया-वस्तु आदि की आज्ञा देने अथवा मंगाने से लगने वाली क्रिया।
(18) वेयारणिया-चीर-फाड़ आदि करने से लगने वाली क्रिया।
(19) अणाभोगवत्तिया-बिना उपयोग के लापरवाही से लगने वाली क्रिया।
(20) अणवकंखवत्तिया-हिंसादि के कार्य करने से लगने वाली क्रिया।
(21) पेज्जवत्तिया-राग उत्पन्न कराने से लगने वाली क्रिया।
(22) दोसवत्तिया-द्वेष उत्पन्न कराने से लगने वाली क्रिया।
(23) पओगकिरिया-प्रमादपूर्वक गमनागमन करने से लगने वाली क्रिया।
(24) समुदाणकिरिया-समुदाय के रूप में लगने वाली क्रिया।
(25) इरियावहियाकिरिया-सयोगी वीतरागियों को लगने वाली क्रिया।

इस प्रकार आश्रव के 5+5+4+3+25= 42 भेद हुए।

संवर तत्त्व

संवर तत्त्व के जघन्य 20 उत्कृष्ट 57 भेद होते हैं। संवर के बीस भेद इस प्रकार हैं- 1. सम्यक्त्व- शुद्ध यथार्थ श्रद्धा रखे तो संवर 2. व्रत प्रत्याख्यान अंगीकार करे तो संवर 3. अप्रमाद- पाँच प्रकार का प्रमाद सेवन न करे तो संवर 4. अकषाय- पच्चीस कषाय का त्याग करे तो संवर 5. शुभ योग- मन, वचन, काया के शुभ योग प्रवर्ताये तो संवर 6. अहिंसा- प्राणातिपात- जीव-हिंसा का त्याग करे तो संवर 7. सत्य-असत्यवचन का त्याग करे तो संवर 8. अदत्तादान- चोरी का त्याग करे तो संवर 9. मैथुन- कुशील का त्याग करे- ब्रह्मचर्य का पालन करे तो संवर 10. अपरिग्रह-परिग्रह का त्याग करे- धन धान्यादि में मूर्च्छा, ममत्व न रखे तो संवर, 11-15 पाँच इन्द्रिय- श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय को वश में रखे, मनोज्ञ शब्द- रूप, गन्ध, रस और स्पर्श में राग न रखे और अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष न करे तो संवर 16. मन वश में रखे तो संवर 17. वचन वश में रखे, सावद्य भाषा का त्याग करे, निरवद्य भाषा बोले, मौन रखे तो संवर 18. भण्ड उपकरण यतना से लेवे व यतना से रखे तो संवर 20. सूई कुशाग्र मात्र यतना से लेवे यतना से रखे तो संवर।

संवर के 57 भेद- **22 परीषह, 5 समिति, 3 गुप्ति, 10 यतिधर्म, 12 भावना और 5 चारित्र, ये संवर के 57 भेद हैं।**

बाईस परीषह- **1. क्षुधा परीषह 2. पिपासा (तृषा) परीषह 3. शीत परीषह 4. उष्ण परीषह 5. दंशमशक परीषह 6. अचेल परीषह 7. अरति परीषह 8. स्त्री परीषह 9. चर्या परीषह 10. निषद्या परीषह 11. शय्या परीषह 12. आक्रोश परीषह 13. वध परीषह 14. याचना परीषह 15. अलाभ परीषह 16. रोग परीषह 17. तृणस्पर्श परीषह 18. जल्ल (मैल-पसीना आदि) परीषह 19. सत्कार पुरस्कार परीषह 20. प्रज्ञा परीषह 21. अज्ञान परीषह 22. दर्शन परीषह।**

समिति के पाँच भेद- **1. ईर्या 2. समिति, भाषासमिति, 3. एषणा समिति, 4. आदान भण्ड मात्र निक्षेपणा समिति, 5. उच्चार प्रश्रवण खेल जल्ल-सिंघाण परिष्ठापनिका समिति।**

गुप्ति के तीन भेद- **मन गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति।**

दस यति धर्म- **1. खंती (क्षमा), 2. मुत्ति (सन्तोष), 3. अज्जवे (आर्जव- ऋजुता), 4. मद्दवे (मार्दव-मृदुता), 5. लाघवे (लघुता), 6. संजमे (संयम), 7. सच्चे (सत्य), 8. तवे (तप), 9. चियाए (त्याग), 10. बंभरचेरवासे (ब्रह्मचर्य), ये दस यति धर्म हैं।**

बारह भावना-

क्र.सं.	भावना का नाम	किसने भाई
1.	**अनित्य**	**भरत चक्रवर्ती ने**

2.	अशरण	अनाथी मुनि ने
3.	संसार	शालिभद्रजी ने
4.	एकत्व	नमिराज ऋषि ने
5.	अन्यत्व	मृगापुत्रजी ने
6.	अशुचि	सनत्कुमार चक्रवर्ती ने
7.	आश्रव	समुद्रपाल मुनि ने
8.	संवर	हरिकेशी मुनि ने
9.	निर्जरा	अर्जुन अणगार ने
10.	लोक	शिवराजऋषि ने
11.	बोधि दुर्लभ	भ. ऋषभदेव के 98 पुत्रों ने
12.	धर्म भावना	धर्म रुचि अणगार ने

चारित्र पाँच प्रकार के बताये गये हैं- **1. सामायिक चारित्र 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र 3. परिहार विशुद्धि चारित्र 4. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र और 5. यथाख्यात चारित्र।**

निर्जरा तत्व

निर्जरा के बारह भेद होते हैं- छह बाह्य तप और छह आभ्यन्तर तप। 1. अनशन 2. ऊनोदरी 3. भिक्षाचर्या 4. रसपरित्याग 5. कायाक्लेश और 6. प्रतिसंलीनता- ये छह बाह्य तप हैं। 7. प्रायश्चित्त 8. विनय 9. वैयावृत्त्य 10. स्वाध्याय 11. ध्यान और 12. व्युत्सर्ग- ये छह आभ्यन्तर तप हैं।

1. अनशन- **चारों प्रकार के आहार का त्याग करना। उसके दो भेद- 1. इत्वरिक (अल्पकाल का) और 2. यावत् कथिक- (जीवन-पर्यन्त)।**

इत्वरिक अनशन के 14 भेद- 1. उपवास 2. बेला 3. तेला 4. चोला 5. पचोला 6. छह 7. सात 8. पन्द्रह दिन 9. एक माह 10. दो माह 11. तीन माह 12. चार माह 13. पाँच माह- और 14. छह माह।

यावत्कथिक के 3 भेद- पादपोपगमन, इंगितमरण और भक्त- प्रत्याख्यान। इन तीनों के दो-दो भेद- 1. निहारी (गाँव में होवे- अग्नि संस्कार सहित) 2. अनिहारी- (गाँव के बाहर होवे- अग्नि संस्कार रहित)।

2. ऊनोदरी- भूख से कम खाना। इसके 14 भेद। प्रमुख भेद दो- 1. द्रव्य और 2. भाव। द्रव्य ऊनोदरी के दो भेद- आहार और उपधि (उपकरण)।

आहार ऊनोदरी के 5 भेद- 1. अष्ट कवल प्रमाण आहार करना पौन ऊनोदरी, 2. बारह कवल प्रमाण आहार करना आधी झाझेरी (कुछ अधिक) ऊनोदरी, 3. सोलह कवल प्रमाण आहार करना आधी ऊनोदरी, 4. चौबीस कवल प्रमाण आहार करना पाव ऊनोदरी और 5. इकतीस कवल प्रमाण आहार करना किंचित् (जघन्य) ऊनोदरी समझना चाहिये। पुरुष के 32, स्त्री के 28, नपुंसक के 24 कवल (ग्रास) प्रमाण आहार बतलाया गया है। अपनी-अपनी भूख से जितना कम आहार करे वह आहार ऊनोदरी है। उपधि ऊनोदरी के 3 भेद- 1. एक वस्त्र, 2. एक पात्र और 3. एक जीर्ण उपधि।

भाव ऊनोदरी के 6 भेद- अल्प क्रोध, अल्प मान, अल्प माया, अल्प लोभ, अल्प शब्द और अल्प कलह।

3. भिक्षाचर्या- विविध प्रकार के अभिग्रह धारण कर भिक्षा का संकोच करते हुए विचरना भिक्षाचर्या तप है। अभिग्रह लेकर भिक्षा लेने से वृत्ति का संकोच होता है, इसलिए यह तप 'वृत्ति संक्षेप' नाम से भी कहा जाता है। भिक्षाचर्या के तीस भेद इस प्रकार हैं-

1. दव्वाभिग्गह चरए- द्रव्य-विशेष का अभिग्रह करना।
2. खेत्ताभिग्गह चरए- क्षेत्र- स्थान विशेष का अभिग्रह करना।
3. कालाभिग्गह चरए- समय विशेष का अभिग्रह करना।
4. भावाभिग्गह चरए-भाव विशेष का अभिग्रह करना।
5. उक्खित्त चरए-पकाने के पात्र से निकाले आहार को ग्रहण करना।
6. णिक्खित्त चरए- पकाने के पात्र से बाहर न निकाले हुए आहार को ग्रहण करना।
7. उक्खित्त णिक्खित्त चरए-पकाने के पात्र से निकाल कर उसी में अथवा दूसरे पात्र में निकाले आहार को ग्रहण करना।
8. णिक्खित्त उक्खित्त चरए-पकाने के पात्र में रखे हुए तथा उसमें से अपने लिए निकाले आहार को ग्रहण करना।
9. वट्टिज्जमाणचरए-परोसे जाते आहार को ग्रहण करना।
10. साहरिज्जमाण चरए-थाली आदि में फैलाए हुए आहार को ग्रहण करना।
11. उवणीअ चरए-किसी अन्य के लिए लाये हुए आहार को ग्रहण करना।
12. अवणीअ चरए-अन्यत्र रखे हुए आहार को ग्रहण करना।
13. उवणीअ अवणीअ चरए- किसी अन्य के लिए लाये हुए आहारादि में से दूसरी जगह रखे आहार को ग्रहण करना।

14. अवणीअ उवणीअ चरए-अन्यत्र रखे हुए आहार में से किसी अन्य के लिए लाये हुए आहार को ग्रहण करना।
15. संसट्ठचरए-भरे हाथों से दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करना।
16. असंसट्ठ चरए-बिना भरे हुए हाथों से दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करना।
17. तज्जाय संसट्ठचरए-देय पदार्थ अथवा वैसे ही अन्य पदार्थ से भरे हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करना।
18. अण्णाय चरए-अज्ञात कुल से आहार आदि को ग्रहण करना।
19. मोण चरए-मौन रहकर आहार आदि ग्रहण करना।
20. दिट्ठलाभिए-सामने दिखाई देने वाले आहार को ग्रहण करना।
21. अदिट्ठ लाभिए-नहीं दिखाई देने वाले आहार को ग्रहण करना।
22. पुट्ठलाभिए-प्रश्न पूछ कर जहाँ आहारादि दिया जाये, वहाँ से ग्रहण करना।
23. अपुट्ठलाभिए-प्रश्न पूछे बिना जहाँ से आहारादि दिया जाये, वहाँ से ग्रहण करना।
24. भिक्ख लाभिए-रूखे-सूखे आहार को ग्रहण करना।
25. अभिक्ख लाभिए-सरस आहार को ग्रहण करना।
26. अण्णगिलायए-एक दिन पहले बने हुए ठण्डे भोजन को ग्रहण करना।
27. ओवणिहिए-नजदीक के घरों से भिक्षा लेना।
28. परिमिय पिण्डवाइए-प्रमाण सहित अर्थात् सीमित आहार लेना।
29. सुद्धेसणिए-दोष रहित आहार ग्रहण करना।
30. संखादत्तिए-दत्ति की संख्या का नियम करके आहार लेना।

4. रस परित्याग- जीभ के स्वाद को छोड़ना, विकार पैदा करने वाले घी, दूध, दही आदि विगयों का त्याग करना, स्निग्ध, गरिष्ठ भोजन न करना, तली हुई, चटपटी मिर्च-मसालों वाली स्वादिष्ट वस्तुओं का त्याग करना 'रस परित्याग' है।

रस परित्याग के 9 भेद-

1. णिव्वियतिए-दूध, दही, घी, तेल, मीठा आदि विगयों से रहित आहार करना।
2. पणीअ रस परिच्चाए-स्निग्ध-गरिष्ठ आहार का त्याग करना।
3. आयंबिलए-आयम्बिल तप करना।
4. आयामसित्थ भोई- चावल के मांड आदि का आहार लेना।
5. अरसाहारे-बघार नहीं दिये हुए आहार को लेना।
6. विरसाहारे- पुराना एवं निस्सार आहार लेना।
7. अंताहारे- चना, परमल आदि का आहार लेना।

8. पंताहारे- खाने के बाद जो शेष बचा हो उसका आहार लेना।

9. लूहाहारे- रूखा-सूखा आहार लेना।

5. कायक्लेश- कर्मों की निर्जरा के लिये उग्र वीरासन आदि आसन करना, शरीर की शोभा शुश्रूषा का त्याग करना इस प्रकार शरीर को कष्ट सहिष्णु बनाना 'कायक्लेश तप' है।

कायक्लेश तप के तेरह भेद इस प्रकार हैं-

1. ठाणट्ठितिए- खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करें।
2. ठाणाइए-बार-बार कायोत्सर्ग करें।
3. उक्कुडु आसणिए-उकडु आसन से बैठें।
4. पडिमट्ठाई-प्रतिमाएँ धारण करें।
5. वीरासणिए-वीरासन से बैठें।
6. नेसज्जिए-पलाथी आसन से बैठें।
7. दंडायए-लम्बा लेटकर पड़ा रहें।
8. लडडसाई-दोनों एडी और सिर भूमि पर लगाये तथा शेष भाग ऊपर रखकर सोए।
9. आयावए-आतापना ग्रहण करें।
10. अवाउडए-बिना वस्त्रों के खुले मैदानादि में कायोत्सर्ग करें।
11. अकंडूअए- शरीर को खुजाले नहीं।
12. अणिट्ठूहए- थूँक को बाहर थूँके नहीं।
13. सव्वगाय परिकम्म विभूस विप्पमुक्के-शरीर की विभूषा नहीं करें।

6. पडिसंलीणया (प्रतिसंलीनता)- प्रतिसंलीनता का अर्थ है- गोपन करना। इन्द्रिय, कषाय और योगों की अशुभ प्रवृत्तियों से आत्म-गुणों की रक्षा करना 'प्रतिसंलीनता तप' है।

प्रतिसंलीनता तप के 13 भेद हैं- 1-5. इन्द्रिय प्रतिसंलीनता- श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय- इन पाँचों इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों (शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श) की ओर जाने से रोकना और प्राप्त पाँचों इन्द्रियों के अनुकूल विषयों में राग और प्रतिकूल विषयों में द्वेष न करना,

6-9. कषाय प्रतिसंलीनता- क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों को उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न हो जाने पर इन्हें निष्फल बनाना,

10-12. योग प्रतिसंलीनता के 3 भेद- मन प्रतिसंलीनता- मन की अशुभ प्रवृत्ति पर नियन्त्रण करना और शुभ प्रवृत्तियों को मन में प्रवर्ताना, वचन प्रतिसंलीनता- अशुभ वचन पर नियन्त्रण करना और शुभ-निर्दोष- सत्य वचन कहना, मौन रखना, काय प्रतिसंलीनता- हाथ-पैर की चेष्टाओं को वश में करना यानी हाथ-पैर से बुरी, हिंसाकारी हरकतें न करना, कछुओं की

तरह इन्द्रियों का गोपन करना और शरीर के सभी अंगों पर काबू रखना,

13. विविक्त शयनासन सेवनता-स्त्री, पशु, नपुंसक रहित मकान में आराम, उद्यान, सभा, प्याऊ आदि स्थानों में प्रासुक एषणीय पाट, पाटला, शय्या, संस्तारक ग्रहण करके रहना।

7. प्रायश्चित्त- धारण किये हुए व्रतों में प्रमाद से लगने वाले दोषों की जिससे शुद्धि हो, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं।

प्रायश्चित्त के 50 भेद- दस प्रकार का प्रायश्चित्त, दस प्रकार की प्रतिसेवना, प्रायश्चित्त देने वाले के दस गुण, प्रायश्चित्त लेने वाले के दस गुण, प्रायश्चित्त- (आलोचना) के दस दोष।

दस प्रकार का प्रायश्चित्त-

1. आलोचना- गुरु के समक्ष दोषों को प्रकट करना।
2. प्रतिक्रमण- दोषों के लिए पश्चात्ताप करते हुए प्रतिक्रमण करना।
3. तदुभय-आलोचना व प्रतिक्रमण दोनों करना।
4. विवेक-अकल्पनीय आहारादि आने पर उसे परठ देना।
5. व्युत्सर्ग-कायोत्सर्ग करना।
6. तप-अनशनादि तप करना।
7. छेद-दीक्षा पर्याय में कमी करना।
8. मूल-नई दीक्षा देकर पुनः महाव्रतों में आरोपण करना।
9. अनवस्थाप्पार्ह-महाव्रतों से अलग कर दोष शुद्धि हेतु विशेष तप कराना, शुद्धि हो जाने पर पुनः दीक्षा देना।
10. पारांचिकार्ह-गृहस्थ वेष पहनाकर उत्कृष्ट बारह वर्ष तक अलग रखना, उत्कृष्ट तप कराना, बाद में पुनः दीक्षा देना।

दस प्रकार की प्रतिसेवना-

1. दर्प- अहंकारवश संयम की विराधना करना।
2. प्रमाद-प्रमाद के वशीभूत होकर दोष लगाना।
3. अनाभोग-बिना उपयोग के अज्ञानवश संयम में दोष लगाना।
4. आतुर-भूखादि से पीड़ित होकर दोष लगाना।
5. आपत्ति-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से आपत्ति आने पर दोष लगाना।
6. शंकित-अनेषणीय आहार होने पर भी शंकित होकर दोष लगाना।

7. सहसाकार-बिना सोचे समझे अचानक कार्य कर दोषों का सेवन करना।
8. भय-राजा, चोर आदि के भय से दोष लगाना।
9. प्रद्वेष-द्वेष या ईर्ष्या के वश दोष लगाना।
10. विमर्श- शिष्यादि की जाँच के लिये दोष लगाना।

प्रायश्चित्त देने वाले के 10 गुण-

1. आचारवन्त- ज्ञानादि पाँच आचार वाला।
2. अवधारणवान- प्रायश्चित्त का ज्ञाता या आधारवान, आलोचना करने वाले के सभी अतिचार दोषों को मन में ही रखने वाला।
3. व्यवहारवान- आगम, सूत्र, आज्ञा, धारणा और जीत इन पाँच व्यवहारों का ज्ञाता।
4. अपव्रीडक- लज्जावश दोषों को छिपाने वाले शिष्य की लज्जा दूर कराने वाला।
5. प्रकुर्वक- आलोचना किये गये दोष का प्रायश्चित्त देकर शुद्धि कराने में समर्थ।
6. अपरिश्रावी- आलोचित दोषों को दूसरे के सामने प्रकट नहीं करने वाला।
7. निर्यापक- एक साथ पूरा प्रायश्चित्त लेने में असमर्थ साधु को खण्ड-खण्ड में प्रायश्चित्त देकर निर्वाह करने वाला।
8. अपायदर्शी- आलोचना नहीं करने से परलोक का भय तथा दूसरे दोष बताने वाला।
9. प्रियधर्मा- जिसको धर्म प्रिय लगता हो।
10. दृढ़धर्मा- जो धर्म में दृढ़ हो।

प्रायश्चित्त लेने वाले के 10 गुण-

1. जाति सम्पन्न- उत्तम जाति वाला, मातृ पक्ष को जाति कहते हैं।
2. कुल सम्पन्न- उत्तम कुल वाला, पितृ पक्ष को कुल कहते हैं।
3. विनय सम्पन्न- विनय वाला।
4. ज्ञान सम्पन्न- ज्ञान वाला।
5. दर्शन सम्पन्न- शुद्ध श्रद्धा वाला।
6. चारित्र सम्पन्न- उत्तम चारित्र पालने वाला।
7. क्षान्त- क्षमा धारण करने वाला।
8. दान्त- इन्द्रियों का दमन करने वाला जितेन्द्रिय।
9. अमायी- माया-कपट रहित अर्थात् सरल परिणामों वाला।

10. अपश्चात्तापी- आलोचना करने के बाद पश्चात्ताप न करने वाला।

प्रायश्चित्त के दस दोष-

1. आकंपइत्ता-काँपते- काँपते आलोचना करे।
2. अणुमाणइत्ता- अनुमान लगाकर आलोचना करें।
3. दिठ्ठं- दोष सेवन करते किसी ने देख लिया हो तो आलोचना करे, नहीं देखा हो तो आलोचना नहीं करे।
4. बायरं- बादर अर्थात् बड़े-बड़े दोष की आलोचना करे सूक्ष्म (छोटा) दोष छिपा लेवे।
5. सुहुमं- सूक्ष्म अर्थात् छोटे-छोटे दोष की आलोचना करे, बड़े दोष छिपा लेवे।
6. छण्णं- लज्जावश कोई सुन न ले, इस ख्याल से धीमे-धीमे बोलकर आलोचना करे।
7. सद्दाउलगं- दूसरों को सुनाने के लिये जोर-जोर से बोलकर आलोचना करे।
8. बहुजण- एक ही दोष की अनेक गीतार्थ मुनियों के पास आलोचना करे।
9. अव्वत्त- जिसे प्रायश्चित्त का ज्ञान नहीं है, ऐसे अगीतार्थ मुनि के पास आलोचना करे।
10. तस्सेवी- जिस दोष की आलोचना करनी है, उसी दोष का सेवन करने वाले साधु के पास आलोचना करे।

8. विनय- ज्ञान आदि सद्गुणों में एवं इन गुणों के धारक महापुरुषों के प्रति बहुमान रखना, उनको उचित सत्कार सम्मान देना 'विनय' कहलाता है। विनय के सात भेद हैं- 1. ज्ञान विनय, 2. दर्शन विनय 3. चारित्र विनय 4. मन विनय 5. वचन विनय 6. काय विनय 7. लोकोपचार विनय।

(1) ज्ञान विनय- ज्ञान और ज्ञानी के प्रति श्रद्धा भक्ति बहुमान रखना, विनय पूर्वक विधि के साथ ज्ञान ग्रहण करना, उसका अभ्यास करना ज्ञान विनय है। ज्ञान विनय के 5 भेद हैं- 1. मतिज्ञान विनय 2. श्रुतज्ञान विनय 3. अवधिज्ञान विनय 4.मनः पर्यायज्ञान विनय 5. केवलज्ञान विनय।

(2) दर्शन विनय- अरिहन्त देव, पंच महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ गुरू और केवली भाषित धर्म पर श्रद्धा रखना 'दर्शन विनय' है। दर्शन और दर्शनवान के प्रति भक्ति बहुमान रखना दर्शन विनय है। दर्शन विनय के दो भेद हैं- शुश्रूषा विनय और अनाशातना विनय। शुश्रूषा विनय के दस भेद-

1. गुरु महाराज एवं रत्नाधिक (दीक्षा में बड़े) को आते देखकर खड़े हो जाना।
2. आसन ग्रहण करने के लिये आमन्त्रित करना अथवा जहाँ बैठना चाहते हों, वहाँ आसन ले जाना।

3. उनके लिये आसन बिछाना।

4. उनका सत्कार करना।

5. उन्हें सम्मान देना।

6. उनका गुणग्राम करना, उनकी स्तुति करना।

7. हाथ जोड़कर सामने खड़े रहना।

8. गुरु महाराज आ रहे हों तो उनके सामने जाना।

9. जब तक विराजे तब तक उनकी सेवा करना।

10. गुरू महाराज जा रहे हों तो उनके पीछे-पीछे जाना यानी उन्हें पहुँचाने जाना।

अनाशातना विनय के 45 भेद- **अरिहन्त भगवान, अरिहन्त प्ररूपित धर्म, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, कुल, गण, संघ, क्रियावन्त, सांभोगिक, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः पर्याय ज्ञान और केवल ज्ञान- इन पन्द्रह की आशातना न करना, इन पन्द्रह में भक्ति बहुमान रखना और इन पन्द्रह के गुणों की स्तुति करना। इस प्रकार अनाशातना विनय के 45 भेद हुए।**

(3) चारित्र विनय के 5 भेद- **1. सामायिक चारित्र विनय, 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र विनय 3. परिहार विशुद्धि चारित्र विनय 4. सूक्ष्मसम्पराय चारित्र विनय 5. यथाख्यात चारित्र विनय।**

(4) मन विनय के दो भेद- **अप्रशस्त मन विनय और प्रशस्त मन विनय। अप्रशस्त मन विनय के बारह भेद- 1. सावद्य, 2. सक्रिय, 3. सकर्कश, 4. कटुक, 5. निष्ठुर, 6. फरूष, 7. आश्रवकारी, 8. छेदकारी, 9. भेदकारी, 10. परितापनाकारी, 11. उपद्रवकारी, 12. भूतोपघातक । उपर्युक्त अप्रशस्त मन विनय के बारह भेद मन के विशेषण हैं अर्थात् इन बारह विशेषण युक्त मन का होना अप्रशस्त मन विनय है। इन बारह बोल सहित अप्रशस्त भाव युक्त मन न प्रवर्तावे।**

प्रशस्त मन विनय के भी बारह भेद होते हैं। अप्रशस्त मन विनय के बारह बोलों से विपरीत। जैसे- 1. असावज्जे- निरवद्य 2. अकिरिए- अक्रिय 3. अकक्कसे- अकर्कश 4. अकडुए- अकटुक (इष्ट) 5. अणिट्ठुरे- अनिष्ठुर 6. अफरूसे- अफरूष 7. अणण्हयकरे- अनाश्रवकारी 8. अछेयकरे- अछेदकारी 9. अभेयकरे- अभेदकारी 10. अपरितावणकरे- परितापना रहित 11. अणुद्दवणकरे- उपद्रव रहित 12. अभूओवघाइए- अभूतोपघातक- इन बारह बोल सहित प्रशस्त भाव युक्त मन प्रवर्तावे।

(5) वचन विनय के दो भेद- **अप्रशस्त वचन विनय और प्रशस्त वचन विनय। दोनों के बारह-बारह भेद मन विनय के समान समझने चाहिये।**

(6) काय विनय के दो भेद- **अप्रशस्त काय विनय और प्रशस्त काय विनय। अप्रशस्त**

काय विनय के सात भेद- 1. बिना उपयोग के असावधानी के साथ जाना, 2. खड़ा रहना, 3. बैठना, 4. सोना, 5. उल्लंघन करना, 6. बार-बार उल्लंघन करना, 7. सभी इन्द्रियों और काय योग की प्रवृत्ति करना।

प्रशस्तकाय विनय के सात भेद- उपयोगपूर्वक सावधानी के साथ- 1. जाना 2. खड़ा होना 3. बैठना 4. सोना 5. उल्लंघन करना 6. बार-बार उल्लंघन करना और 7. सभी इन्द्रियों और काययोग की प्रवृत्ति करना।

(7) लोकोपचार विनय के सात भेद-

1. गुरु के समीप रहना।

2. गुरु तथा बड़ों की इच्छानुसार प्रवृत्ति करना।

3. ज्ञानादि की प्राप्ति के लिये उन्हें आहारादि लाकर देना।

4. ज्ञान सिखाने वाले गुरुजनों की सेवा करना।

5. बीमार साधुओं वैयावृत्त्या करना।

6. देश काल देखकर उचित प्रवृत्ति करना।

7. सभी कार्यों में गुरु महाराज के अनुकूल रहकर प्रवृत्ति करना।

इस प्रकार विनय के 5+55+5+24+24+14+ 7=134 भेद हुए।

(9) वैयावच्च (वैयावृत्त्य)- **आचार्य, उपाध्याय आदि की आहार-पानी आदि से तथा अन्य प्रकार से सेवा करना 'वैयावच्च' है।**

वैयावच्च के अधिकारी दस हैं- **अतः वैयावच्च के भी दस भेद बताये गये हैं- 1. आचार्य की वैयावच्च, 2. उपाध्याय की वैयावच्च, 3. नवदीक्षित की वैयावच्च, 4. ग्लान- रोगी की वैयावच्च, 5. तपस्वी की वैयावच्च, 6. स्थविर (अवस्था, ज्ञान और दीक्षा पर्याय से जो स्थविर हो) की वेयावच्च, 7. स्वधर्मी साधु-साध्वी की वैयावच्च, 8. कुल की वैयावच्च, 9. गण की वैयावच्च, 10. संघ की वैयावच्च।**

(10) स्वाध्याय- **आत्मस्वरूप का अध्ययन करना, मर्यादा पूर्वक जिनवाणी का अध्ययन करना 'स्वाध्याय तप' कहलाता है। पढ़ना, पढ़ाना, सन्देह होने पर गुरु से पूछना, पढ़े हुए ग्रन्थ की पुनःपुनः आवृत्ति करना, मनन करना, धर्मोपदेश देना भी स्वाध्याय है।**

स्वाध्याय के 5 भेद- **1. वायणा (वाचना)- गुरु से सूत्र अर्थ पढ़ना, 2. पडिपुच्छणा (प्रतिपृच्छना)- शंका-समाधान के लिए अथवा विशेष निर्णय के लिए प्रश्न करना, 3. परियट्टणा (परिवर्तना)- सीखे हुए ज्ञान को बार-बार फेरना, 4. अणुप्पेहा (अनुप्रेक्षा)- सीखे हुए सूत्रादि ज्ञान का मनन-चिन्तन करना, 5. धम्मकहा (धर्मकथा)- धर्मोपदेश देना।**

(11) ध्यान- **मन को प्रयत्न विशेष से भिन्न-भिन्न विषयों के चिन्तन से हटाकर एक ही**

विषय पर स्थिर रखना 'ध्यान' कहलाता है। ध्यान की यह व्याख्या छद्मस्थों के ध्यान की अपेक्षा से है। ध्यान सन्नी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में ही होता है, असन्नी जीवों में नहीं। केवलज्ञानी की अपेक्षा से योगों का निरोध करना 'ध्यान' कहलाता है। ध्यान चार हैं- 1. आर्त्तध्यान 2. रौद्रध्यान 3. धर्मध्यान 4. शुक्लध्यान।

आर्त्तध्यान के 4 भेद (पाया)-

1. अमनोज्ञ शब्दादि विषयों के वियोग का निरन्तर चिन्तन करना।
2. मनोज्ञ शब्दादि विषयों का संयोग निरन्तर रहे, ऐसा चिन्तन करना।
3. व्याधि जनित वेदना से दुःखी होकर उसकी शान्ति के लिए चिन्तन करना।
4. प्राप्त काम-भोगों का कभी वियोग न हो, ऐसा चिन्तन करना।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण-

1. ऊचे स्वर से रोना-चिल्लाना।
2. दीनपना लाना।
3. टप-टप आँसू गिराना।
4. बार-बार विलाप करना।

रौद्रध्यान के चार भेद (पाया)-

1. हिंसानुबन्धी-हिंसाकारी कार्यों का चिन्तन करना।
2. मृषानुबन्धी-झूठ बोलने का चिन्तन करना।
3. स्तेनानुबन्धी- चोरी करने तथा चोरी के उपायों का चिन्तन करना।
4. संरक्षणानुबन्धी-शब्दादि विषयों एवं धन-धान्यादि के संरक्षण का चिन्तन करना।

रौद्रध्यान के चार लक्षण-

1. हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषों का सेवन करना।
2. हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषों का बार-बार सेवन करना।
3. अधर्म के कार्यों में धर्म मानकर प्रवृत्ति करना।
4. मरण पर्यन्त हिंसादि पाप कर्मों में रचे-पचे रहना।

धर्मध्यान के चार भेद (पाया)-

1. आज्ञाविचय-जिनेश्वर भगवान की आज्ञा एवं उनके गुणों का चिन्तन करना।
2. अपायविचय- राग-द्वेषादि दोषों को तथा उनसे होने वाली हानियों का चिन्तन करना।
3. विपाकविचय-कर्मों के विपाक-फल का चिन्तन करना।

4. संस्थान विचय-पुरुषाकार लोक का चिन्तन करना।

धर्मध्यान के चार लक्षण-

1. आज्ञारुचि- जिनाज्ञा में रुचि-श्रद्धा रखना,
2. निसर्गरुचि- बिना किसी उपदेश के, पूर्व संस्कारों के कारण, स्वभाव से ही जिनभाषित तत्त्वों में श्रद्धा रखना,
3. उपदेशरुचि- साधु-सन्तों का उपदेश सुनकर तत्त्व-ज्ञान समझकर जिनभाषित तत्त्वों में श्रद्धा रखना,
4. सूत्ररुचि- सूत्र पढ़कर वीतराग द्वारा प्रतिपादित तत्त्व समझना और समझकर श्रद्धा करना।

धर्मध्यान के चार आलम्बन- 1. वायणा, 2. पडिपुच्छणा, 3. परियट्टणा, 4. धम्मकहा। इनका स्वरूप स्वाध्याय में बताया जा चुका है।

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षा (भावना)-

1. अनित्यानुप्रेक्षा- संसार, सांसारिक पदार्थ एवं सम्बन्ध तथा शरीर की अनित्यता, नश्वरता का चिन्तन करना,
2. अशरणानुप्रेक्षा- माता, पिता, बहिन, भाई, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि कोई भी इस आत्मा की जन्म, जरा और मृत्यु के भय से तथा विविध-व्याधि जन्य वेदना से रक्षा करने वाला नहीं हैं, इस प्रकार अशरण भाव का चिन्तन करना,
3. एकत्वानुप्रेक्षा- यह जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जाने वाला है। माता-पिता, स्वजन-सम्बन्धी तथा धन-सम्पत्ति आदि कोई भी अपने नहीं हैं। यह शरीर तक अपना नहीं है। इस प्रकार आत्मा के एक असहाय होने का चिन्तन करना,
4. संसारानुप्रेक्षा- यह जीव माता बनकर पुत्र बनता है, पुत्र होकर स्त्री होता है और स्त्री होकर बहिन होता है, इस प्रकार संसार की विचित्रता का एवं गति-आगति आदि के स्वरूप का चिन्तन करना।

शुक्ल ध्यान के चार भेद-

1. पृथक्त्व वितर्क सविचारी- जब ध्यान करने वाला पूर्वधर हो तो पूर्वों के ज्ञान के आधार से, अन्यथा सम्भावित श्रुत के आधार से भेदप्रधान चिन्तन करना।
2. एकत्व वितर्क अविचारी- पूर्व ज्ञान अथवा सम्भावित श्रुतज्ञान के आधार पर किसी एक ही द्रव्य अथवा पर्याय को लेकर उस पर अभेदप्रधान चिन्तन करना।
3. सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती- मोक्ष जाने से पूर्व केवली भगवान के मन योग, वचन योग और काया के स्थूल योग का निरोध करने के पश्चात् सूक्ष्म क्रिया का निरोध करते समय की

अवस्था।

4. समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्ति- शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली भगवान सभी योगों का निरोध कर जब अयोगी बन जाते हैं, उस समय की चौदहवें गुणस्थान की अवस्था।

शुक्ल ध्यान के पहले दो भेदों में श्रुत ज्ञान का आधार होता है और पिछले दो भेदों में श्रुतज्ञान का आलम्बन नहीं होता। शुक्ल ध्यान का पहला भेद आठवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक होता है। ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान में शुक्ल ध्यान का दूसरा भेद होता है। तेरहवें गुणस्थान के अन्त में जब केवली भगवान श्वासोच्छवास का निरोध करते हैं तब शुक्ल ध्यान का तीसरा भेद होता है। चौदहवें गुणस्थान में शुक्ल ध्यान का चौथा भेद पाया जाता है।

शुक्ल ध्यान के चार लक्षण-

1. विवेक- शरीर से आत्मा को भिन्न समझना और आत्मा को सभी संयोगों से भिन्न समझना।
2. व्युत्सर्ग- निःसंग यानी संग (आसक्ति) रहित होने से शरीर और उपधि का त्याग करना।
3. अव्यथ- देवादिक का उपसर्ग होने पर भी भयभीत होकर विचलित न होना।
4. असंमोह- देवादि की माया से मोहित न होना और सूक्ष्म पदार्थ विषयक चिन्तन में न उलझना।

शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन- 1. खंती (क्षमा)- क्रोध का त्याग, 2. मुत्ति (मुक्ति)- लोभ का त्याग, 3. अज्जवे (आर्जव)- माया का त्याग, 4. मद्दवे (मार्दव)- मान का त्याग।

शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षा (भावना)-

1. अपायानुप्रेक्षा- प्राणातिपात, मृषावाद आदि आश्रव द्वारों से होने वाले अनर्थों का चिन्तन करना।
2. अशुभानुप्रेक्षा- संसार के अशुभपन का चिन्तन करना।
3. अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा- भव परम्परा का अन्त नहीं है। अनन्त काल से यह जीव संसार की विभिन्न योनियों में निरन्तर भ्रमण कर रहा है। इस प्रकार का चिन्तन करना।
4. विपरिणामानुप्रेक्षा- वस्तुओं का प्रतिक्षण विविध रूपों में विपरिणमन- परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार का चिन्तन करना।

(12) व्युत्सर्ग- व्युत्सर्ग का अर्थ त्याग है। व्युत्सर्ग के दो भेद हैं- द्रव्य व्युत्सर्ग और भाव व्युत्सर्ग। द्रव्य व्युत्सर्ग के चार भेद-

1. शरीर व्युत्सर्ग- शरीर का त्याग करना यानी शरीर में ममत्व न रखना।
2. गण व्युत्सर्ग- गच्छ का व्युत्सर्ग (त्याग) कर एकान्त में ध्यान करना, जिनकल्प स्वीकार करना।
3. उपधि व्युत्सर्ग- उपकरण का त्याग करना।
4. भक्त पान व्युत्सर्ग- आहार पानी का त्याग करना।

भाव व्युत्सर्ग के 4 भेद-

1. कषाय व्युत्सर्ग- क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चार कषाय का त्याग करना।
2. योग व्युत्सर्ग- मन, वचन, काया के योगों का त्याग करना।
3. कर्म व्युत्सर्ग- ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के बन्ध के कारणों का त्याग करना। आठ कर्मों के भेद से कर्म व्युत्सर्ग के भी आठ भेद होते हैं।
4. संसार व्युत्सर्ग- नरकायु आदि के कारण रूप मिथ्यात्व आदि का त्याग करना।

संसार व्युत्सर्ग के चार भेद- नरक संसार व्युत्सर्ग, तिर्यंच संसार व्युत्सर्ग, मनुष्य संसार व्युत्सर्ग और देव संसार व्युत्सर्ग।

इस प्रकार निर्जरा के 20+14+30+9+13+ 13+50+134+10+5+48+8= 354 भेद होते हैं।

बन्ध तत्त्व

बन्ध के चार भेद- 1. प्रकृति बन्ध, 2. स्थिति बन्ध, 3. अनुभाग बन्ध और 4. प्रदेशबन्ध।

1. प्रकृति बन्ध- जीव के साथ सम्बद्ध कर्म-पुद्गलों में ज्ञान को आवरण करने, दर्शन को रोकने, सुख-दुःख देने आदि अलग-अलग स्वभाव का होना 'प्रकृति बन्ध' कहलाता है।
2. स्थिति बन्ध- जीव के साथ सम्बद्ध कर्म- पुद्गलों की, अमुक काल तक ज्ञान को आवरण करने आदि रूप अपने-अपने स्वभाव का त्याग न करते हुए, जीव के साथ रहने की काल मर्यादा को 'स्थिति बन्ध' कहते हैं।
3. अनुभाग बन्ध- कर्मों के फल देने की तीव्रता-मन्दता आदि विशेषताओं का न्यूनाधिक होना 'अनुभाग बन्ध' कहलाता है। अनुभाग बन्ध को अनुभाव बन्ध, अनुभव बन्ध तथा रस बन्ध भी कहते हैं।
4. प्रदेश बन्ध- जीव के साथ सम्बद्ध कार्मण वर्गणा के स्कन्धों का न्यूनाधिक प्रदेश वाला होना 'प्रदेश बन्ध' कहलाता है।

उक्त चार प्रकार के बन्ध का स्वरूप समझाने के लिए मोदक का दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे- सोंठ, पीपर, कालीमिर्च आदि वायुनाशक पदार्थों से बने हुए मोदक का स्वभाव वायुनाश करने का होता है। इसी प्रकार पित्तनाशक एवं कफनाशक पदार्थों से बने हुए मोदक का स्वभाव क्रमशः पित्त और कफनाश करने का होता है। इसी तरह जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कार्मण

वर्गणा के स्कन्धों में से कुछ ज्ञान को ढँकते हैं तो कुछ दर्शन को रोकते हैं, कुछ सुख-दुःख देते हैं तो कुछ आत्मा की शक्ति को ही दबा देते हैं। इस प्रकार आत्मा से सम्बद्ध कार्मण वर्गणा के स्कन्धों का अलग-अलग स्वभाव होना प्रकृति बन्ध है।

जैसे- कुछ मोदक एक सप्ताह तक, कुछ एक पक्ष तक, कुछ एक माह तक विकृत नहीं होते। इस मर्यादा के उपरान्त वे खराब हो जाते हैं। इसी प्रकार कोई कर्म आत्मा के साथ अन्तर्मुहूर्त तक, तो कोई बीस कोडा-कोडी सागरोपम तक और कोई सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम तक रहते हैं। इस प्रकार कर्मों का अलग-अलग काल मर्यादा तक अपने स्वभाव का त्याग न करते हुए आत्मा के साथ रहना स्थिति बन्ध है।

जैसे- कोई मोदक अधिक मधुर होता है, कोई कम मधुर होता है। कोई मोदक अधिक कटु होता है और कोई कम कटु होता है। इसी प्रकार कर्म पुद्गलों की मन्द, मन्दतर और मन्दतम तथा तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम शुभ-अशुभ फल देने की शक्ति अनुभाग बन्ध है।

जैसे- मोदक परिमाण में दो तोले, पाँच तोले, आधा पाव, और पाव- इस प्रकार भिन्न-भिन्न परिमाण का होता है इसी प्रकार कर्म स्कन्धों में न्यूनाधिक प्रदेशों का होना प्रदेश बन्ध है।

प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से होते हैं, जबकि स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध कषाय के निमित्त से होते हैं।

8 कर्मों की 148 प्रकृति में से 120 प्रकृतियों का बन्ध होता है- ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28 में से समकित मोह, मिश्र मोह इन दो को छोड़कर 26, आयुकर्म की 4, नाम कर्म की 93 में से 5 शरीर के बन्धन, 5 संघातन, 16 वर्णादि, इन 26 प्रकृतियों को छोड़कर 67, गोत्र कर्म की 2 और अन्तराय कर्म की 5, इस प्रकार 5+9+2+26+4+ 67+2+5= 120

मोक्ष तत्त्व

बारहवें गुणस्थान में रहा हुआ मुनि अन्त समय में तीन घाती कर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म) का क्षय करके (मोहनीय कर्म का दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में क्षय हो चुका है) केवल ज्ञान, केवल-दर्शन प्राप्त कर तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थान में जाता है। इस गुणस्थान में जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन क्रोड़ पूर्व तक रहता है। अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर योग का निरोध करता है। तत्पश्चात् चौदहवें गुणस्थान में शैलेशी भाव अंगीकार कर चार अघाती कर्मों का क्षय करता है और एरण्ड के बीज की तरह ऊर्ध्व गति करता हुआ लोक के अग्र भाग में स्थित सिद्ध क्षेत्र में, जहाँ अनन्त सिद्ध हैं, पहुँचकर वहाँ विराजमान होता है। आठ कर्मों के क्षय होने से सिद्धात्मा आठ गुण- अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, निराबाध सुख, क्षायिक समकित, अटल अवगाहना, अमूर्ति, अगुरुलघु, अनन्त आत्म-सामर्थ्य से शोभित हैं। मोक्ष तत्त्व का नौ द्वारों से वर्णन किया जाता है। 1. सत्पद प्ररूपणा द्वार, 2. द्रव्य प्रमाण द्वार, 3. क्षेत्र द्वार, 4. स्पर्शना द्वार, 5. काल द्वार, 6. अन्तर द्वार, 7. भाग द्वार, 8. भाव द्वार और 9. अल्प बहुत्त्व द्वार।

1. सत्पद प्ररूपणा द्वार- **मोक्ष सत्स्वरूप है, किन्तु आकाश कुसुम की तरह असत्स्वरूप नहीं है। अर्थात् जैसे आकाश में कुसुम नहीं खिलते, उसी प्रकार मोक्ष का अस्तित्व नहीं होता, ऐसा नहीं समझना किन्तु मोक्ष सत् रूप हैं, सदाकाल रहने वाला है, ऐसा समझना चाहिए। इस द्वार के अन्तर्गत चौदह मार्गणाओं द्वारा मोक्ष का वर्णन किया जाता है। चौदह मार्गणाएँ ये हैं-**

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक। इन चौदह मार्गणाओं के कुल भेद 62 होते हैं निम्नांकित दस मार्गणाओं के जीव मोक्ष जा सकते हैं-

1. मनुष्य गति, 2. पंचेन्द्रिय जाति, 3. त्रसकाय, 4. भव्य, 5. संज्ञी, 6. यथाख्यात चारित्र, 7. क्षायिक सम्यक्त्व, 8. अनाहारक, 9. केवल ज्ञान और 10. केवल दर्शन। चार मार्गणा- कषाय, वेद, योग और लेश्या सहित जीव मोक्ष नहीं जा सकता।

2. द्रव्य प्रमाण द्वार- **द्रव्य से सिद्ध जीव अनन्त हैं। अभव्य से अनन्त गुणे हैं।**

3. क्षेत्र द्वार- **सिद्ध जीव चौदह राजू प्रमाण लोक के असंख्यातवें भाग में यानी 45 लाख योजन प्रमाण क्षेत्र में अवस्थित हैं।**

4. स्पर्शना द्वार- **सिद्ध भगवान् की जितनी अवगाहना है उससे स्पर्शना कुछ अधिक है।**

5. काल द्वार- **एक सिद्ध की अपेक्षा सिद्ध जीव सादि अनन्त हैं और सभी की अपेक्षा अनादि अनन्त हैं।**

6. अन्तर द्वार- **सिद्धों में अन्तर नहीं पड़ता। सिद्ध जीव वापस संसार में नहीं आते और जहाँ एक सिद्ध है वहाँ अनन्त सिद्ध हैं, इसलिए अन्तर नहीं होना कहा गया है। केवल ज्ञान केवल दर्शन सम्बन्धी अन्तर भी सिद्धों में नहीं है। इनकी अपेक्षा भी सभी सिद्ध जीव समान हैं।**

7. भाग द्वार- **सिद्ध जीव संसारी जीवों के अनन्तवें भाग हैं। सभी सिद्धों से एक निगोद के जीव अनन्त गुण अधिक हैं।**

8. भाव द्वार- **सिद्धों में क्षायिक और पारिणामिक ये दो भाव पाये जाते हैं। क्षायिक भाव में केवल ज्ञान, केवल दर्शन और क्षायिक सम्यक्त्व पाये जाते हैं। पारिणामिक भाव में जीवत्व पाया जाता है।**

9. अल्पबहुत्व द्वार- **सबसे थोड़े नपुंसक लिंग सिद्ध हैं। स्त्रीलिंग सिद्ध उनसे संख्यात गुणा अधिक हैं और उनसे भी पुरुष लिंग सिद्ध संख्यात गुणा हैं। कारण यह है कि नपुंसक लिंग वाले एक समय में उत्कृष्ट दस मोक्ष जा सकते हैं। स्त्री लिंग से एक समय में उत्कृष्ट बीस और पुरुष लिंग से एक समय में 108 मोक्ष जा सकते हैं।**

सिद्धों के पन्द्रह भेद-

1. तीर्थ सिद्ध- तीर्थ (जिनवचन, चतुर्विध संघ और प्रथम गणधर) की स्थापना होने के बाद जो सिद्ध होते हैं, वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- अर्जुन माली,

2. अतीर्थ सिद्ध- तीर्थ की स्थापना होने से पहले अथवा तीर्थ का विच्छेद होने पर जो सिद्ध होते हैं, वे अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- मरूदेवी माता आदि।

3. तीर्थंकर सिद्ध- तीर्थंकर पद को प्राप्त कर जो मोक्ष में जाते हैं, वे तीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं जैसे- अजितनाथजी।

4. अतीर्थंकर सिद्ध- सामान्य केवली होकर मोक्ष में जाने वाले अतीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- धन्नाजी।

5. स्वयं बुद्ध सिद्ध- जो दूसरों के उपदेश बिना स्वयमेव बोध प्राप्त कर मोक्ष में जाते हैं, वे स्वयं बुद्ध-सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- तीर्थंकर आदि।

6. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध- जो किसी के उपदेश बिना ही पदार्थ विशेष को देखकर वैराग्य प्राप्त करते हैं और दीक्षा धारण कर मोक्ष में जाते हैं, वे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध हैं, जैसे- नमिराज, करकंडू मुनि आदि।

7. बुद्धबोधित सिद्ध- गुरु के उपदेश से बोध प्राप्त कर, दीक्षित होकर जो मोक्ष में जाते हैं, इन्हें बुद्ध बोधित सिद्ध कहते हैं, जैसे- जम्बू स्वामी।

8. स्त्रीलिंग सिद्ध- जो स्त्री पर्याय में रहते हुए मोक्ष जाते हैं, उन्हें स्त्रीलिंग सिद्ध कहते हैं, जैसे- चन्दनबाला।

9. पुरुषलिंग सिद्ध- जो पुरुष पर्याय में रहते हुए मोक्ष में जाते हैं, उन्हें पुरुषलिंग सिद्ध कहते हैं, जैसे- गौतम स्वामी।

10. नपुंसक लिंग सिद्ध- नपुंसक पर्याय में रहते हुए मोक्ष जाने वाले नपुंसक लिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- गांगेय अणगार।

11. स्वलिंग सिद्ध- जैन साधु के वेष में रहते हुए मोक्ष जाने वाले स्वलिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- सुधर्मा स्वामी।

12. अन्यलिंग सिद्ध- अन्य मत के साधुओं के वेष में रहकर जो मोक्ष में जाते हैं, उन्हें अन्यलिंग सिद्ध कहते हैं, जैसे- वल्कल चीरी।

13. गृहस्थ लिंग सिद्ध- गृहस्थ के वेष में मोक्ष जाने वाले गृहस्थ लिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- मरूदेवी माता।

14. एक सिद्ध- एक समय में अकेला ही मोक्ष जाने वाला जीव एक सिद्ध कहलाता है, जैसे- महावीर स्वामी।

15. अनेक सिद्ध- एक समय में एक से अधिक यानी दो से लेकर एक सौ आठ तक मोक्ष में जाने वाले जीव अनेक सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- भगवान ऋषभ देव।

नव तत्त्वों के जानने से लाभ–

जो जीवादि नव तत्त्वों को जानता है, उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। सम्यक्त्व प्राप्त करने वाला जीव संसार को परीत्त- सीमित कर देता है एवं सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना कर सकल कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त करता है।

।।नव तत्त्व का थोकड़ा समाप्त।।

जयन्ती बाई के प्रश्न

श्री भगवती सूत्र शतक 12 उद्देशक 2 में 'जयन्ती बाई' के प्रश्न और भगवान के उत्तर का वर्णन इस प्रकार है-

प्र.1- अहो भगवन्! जीव के भारी होने का क्या कारण है और किस प्रकार जीव हल्का होता है?

उत्तर- हे जयंती! अठारह प्रकार के पापों के आचरण से जीव भारी होता है और इन पापों से विरत होने (त्याग करने) से जीव हल्का होता है।

प्र.2- अहो भगवन्! किस कारण से जीव संसार को बढ़ाता है और किस आचरण से संसार को घटाता है?

उत्तर- हे जयंती! अठारह पापों के आचरण से जीव संसार बढ़ाता है और अठारह पापों से निवृत्त होकर जीव संसार को घटाता है।

प्र.3- अहो भगवन्! किस कारण से जीव कर्मों की स्थिति बढ़ाता है और किस आचरण से घटाता है?

उत्तर- हे जयंती! अठारह पापों का आचरण करके जीव कर्मों की स्थिति बढ़ाता है और अठारह पापों का त्याग करके जीव कर्मों की स्थिति घटाता है।

प्र.4- अहो भगवन्! किस कारण से जीव संसार-सागर में परिभ्रमण करता है और किस विधि से जीव, संसार-सागर को तिर कर पार हो जाता है?

उत्तर- हे जयंती! अठारह पापों के सेवन से जीव संसार-सागर में रुलता रहता है और अठारह पापों का त्याग कर के जीव, संसार से तिर जाता है।

प्र.5- अहो भगवन्! जीवों का भवसिद्धिपना स्वभाव से है, या परिणाम से?

उत्तर- हे जयंती! जीवों का भवसिद्धिपना स्वभाव से है, परिणाम से नहीं। (किसी कर्मादि के कारण से नहीं हैं)

प्र.6- अहो भगवन्! क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे?

उत्तर- हे जयन्ती! सभी भवसिद्धिक जीव, मोक्ष प्राप्त करेंगे।

प्र.7- अहो भगवन्! सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में चले जायेंगे, तो क्या लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जायेगा?

उत्तर- हे जयन्ती! णो इणट्ठे समट्ठे - यह नहीं हो सकता, अर्थात् सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में जायेंगे, तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा।

अहो भगवन्! इसका क्या कारण है?

हे जयंती! यथा-दृष्टान्त - जैसे आकाश की श्रेणी अनादि अनन्त हैं। उसमें से एक-एक परमाणु खण्ड जितना प्रदेश, एक-एक समय में निकाले। इस प्रकार निकालते-निकालते अनन्ती अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी पूरी हो जाय, तो भी यह आकाश श्रेणी खाली नहीं होती। इसी प्रकार सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष जायेंगे तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से कभी भी खाली नहीं होगा।

{जितने जीव मोक्ष में जाते हैं, उतने ही भव्य जीव अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आ जाते हैं, इस कारण से व्यवहार राशि में भव्य जीव हमेशा बराबर ही रहते हैं। वर्तमान, भूत और भविष्यत् काल के उदाहरण से इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है। जैसे भविष्यत् काल वर्तमान में आता है और एक समय बाद भूत में चला जाता है। यह क्रम अनादिकाल से चल रहा है और अनन्त काल तक चलेगा। किन्तु फिर भी भविष्यत् काल का कभी अन्त नहीं होगा। अव्यवहार राशि में इतने अनन्तानन्त भव्य जीव हैं कि कभी भी उनका अन्त ही नहीं आता। व्यवहार राशि में भव्य तथा अभव्य दोनों प्रकार के जीव अनादि काल से रहे हुए हैं। व्यवहार राशि के सभी भव्य जीव अवश्य मोक्ष में जाते हैं।

अव्यवहार राशि में भवी जीव ही है। अभवी जीव नहीं है। अव्यवहार राशि में ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं, जिन्हें कभी वहाँ से निकलने का अवसर ही नहीं मिल पाता, इसलिए वे भव्य होते हुए भी मोक्ष में नहीं जा पाते। जो व्यवहार राशि में आ जाते हैं, वे अवश्य ही मोक्ष में जाते हैं।}

प्र.8- अहो भगवन्! जीव सोते हुए अच्छे या जागते हुए अच्छे?

उत्तर- हे जयंती! कोई जीव सोते हुए अच्छे होते हैं और कोई जीव जागते हुए अच्छे होते हैं।

अहो भगवन्! इसका क्या कारण है ?

हे जयंती! जो जीव अधर्मी हैं, अधर्म का काम करते हैं, अधर्म का उपदेश देते हैं, अधर्म में आनन्द मानते हैं, यावत् अधर्म से आजीविका करते हैं, वे जीव सोते हुए अच्छे हैं। सोते रहने पर वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दुःख नहीं दे पाते, यावत् परितापना नहीं उपजाते, अपनी तथा दूसरों की आत्मा को अधर्म में नहीं जोड़ते। इस कारण अधर्मी जीव सोते हुए अच्छे हैं।

जो जीव धर्मी हैं, यावत् धर्म से आजीविका करते हैं, वे जागते हुए अच्छे हैं। जागते हुए वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व के लिए सुखकारी होते हैं, यावत् अपनी तथा दूसरों की आत्मा को धर्म में जोडते हैं।

प्र.9-10. जिस प्रकार सोते-जागते के प्रश्नोत्तर कहे, उसी प्रकार बलवान् व निर्बल तथा उद्यमी और आलसी के विषय में भी कहना चाहिये। इसमें विशेषता यह है कि जिसका उद्यम अच्छा होगा वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी यावत् स्वधर्मी की वैयावच्च (सेवा) में अपनी आत्मा को

जोड़ेगा।

प्र.11- अहो भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय के वश में हुआ जीव कैसे कर्म बांधता है?

उत्तर- हे जयंती! आयुष्य कर्म को छोड़कर बाकी सात कर्मों की प्रकृति यदि ढीली हो तो गाढ़ी-दृढ करता है। थोड़े काल की स्थिति हो तो बहुत काल की स्थिति करता है। मन्द रस वाली हो तो तीव्र रस वाली करता है। आयुष्य बांधता है अथवा नहीं भी बांधता। असातावेदनीय कर्म बार-बार बांधता है और चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

प्र.12-15. जिस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय के विषय में कहा, उसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में भी कहना चाहिये।

जयंती श्रमणोपासिका अपने प्रश्नों का उत्तर सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। उसे पूर्ण सन्तोष हुआ। उसने देवानन्दा की तरह दीक्षा लेकर और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गति को प्राप्त किया।

भव–भ्रमण का थोकड़ा

(बारहवें शतक का सातवाँ उद्देशक)

श्री भगवती सूत्र के 12 वें शतक के 7 वें उद्देशक में 'भव-भ्रमण' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं-

1. अहो भगवन्! यह लोक कितना बड़ा है?

हे गौतम! यह लोक असंख्याता कोड़ाकोड़ी योजन का लम्बा चौड़ा विस्तार वाला है।

2. अहो भगवन्! इतने बड़े लोक में क्या ऐसा कोई एक भी आकाश प्रदेश है जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण न किया हो?

हे गौतम! नो इणट्ठे समट्ठे (यह बात नहीं है) ऐसा एक भी आकाश प्रदेश खाली नहीं रहा है, जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण न किये हों। यथा- * बकरियों के बाड़े का दृष्टान्त।

नरक आदि सब स्थानों में सब जीव त्रस, स्थावरपने अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं परन्तु तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक तक तथा नव ग्रैवेयकों में देवीपने उत्पन्न नहीं हुए और पांच अनुत्तर विमानों में देवपणे और देवीपणे उत्पन्न नहीं हुए।

3. अहो भगवन्! क्या यह जीव सब जीवों के मातापने, पितापने, भाईपने, बहनपने, स्त्रीपने, पुत्रपने, पुत्रीपने, पुत्रवधूपने उत्पन्न हुआ है?

हाँ गौतम! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। इसी तरह सब जीव भी इस जीव के माता-पिता आदि परिवारपने उत्पन्न हुए हैं।

4. अहो भगवन्! क्या यह जीव सब जीवों के शत्रुपने, वैरीपने, घातकपने, वधकपने, प्रत्यनीकपने और मित्रपने उत्पन्न हुआ है?

हाँ गौतम! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार सभी जीव भी इस जीव के शत्रुपने आदि उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार यह जीव सभी जीवों का राजा, युवराज यावत् सार्थवाह, दास, चाकर, शिष्य और शत्रुपने, अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुआ है और सभी जीव भी इसी प्रकार इस जीव के राजापने यावत् शत्रुपने अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं। क्योंकि लोक शाश्वत है, अनादि है, जीव नित्य है, अपने कर्मानुसार जन्म-मरण करता है। इससे जीव संसार में परिभ्रमण करता है।

---

* जैसे - कोई पुरुष 100 सौ बकरियों के लिए एक विशाल बाड़ा बनवावे और उसमें कम से कम एक दो तीन और अधिक से अधिक एक हजार बकरियों को रखे और उसमें उनके लिए खूब घास पानी डाल दे। यदि बकरियाँ वहाँ कम से कम एक, दो, तीन दिन और अधिक से अधिक छह महीने तक रहे तो उस बाड़े का ऐसा कोई परमाणु पुद्गल मात्र प्रदेश उन बकरियों की मिंगणियाँ, मूत्र आदि से तथा खुर, नख आदि से अस्पर्शित रह भी सकता है। परन्तु इस विशाल लोक में लोक के शाश्वत भाव की अपेक्षा से, संसार के अनादि भाव की अपेक्षा से, नित्य भाव की अपेक्षा से, कर्मों की अधिकता की अपेक्षा तथा जन्म-मरण की अधिकता की अपेक्षा से इस लोक में ऐसा कोई भी आकाश प्रदेश नहीं, जहाँ जीव न जन्मा हो अथवा न मरा हो।

1. संसार में ऐसी कोई जगह नहीं बची, जहाँ इस जीव ने जन्म मरण नहीं किया हो। इस बात की पुष्टि के लिए पाँच कारण बतलाये हैं-
   - **A.** लोक शाश्वत है। (विनाशी होने पर संसार में सभी जगहों पर जन्म-मरण की बात घटित नहीं हो सकती)
   - **B.** लोक अनादि है। (लोक को सादि-आदि सहित मानने पर भी सभी जगह जन्म-मरण की बात घटित नहीं हो सकती)
   - **C.** जीव नित्य है। (यदि जीव अनित्य हो तो भी सभी जगहों पर जन्म-मरण की बात घटित नहीं हो सकती)
   - **D.** कर्मों की बहुलता है। (यदि कर्मों की अल्पता हो तो भी सब जगह जन्म-मरण नहीं हो सकता)
   - **E.** जन्म-मरण की बहुलता है। (यदि जन्म-मरण की अल्पता हो तो भी सब जगह जन्म-मरण नहीं हो सकता)
2. सूक्ष्म व साधारण वनस्पति अर्थात् निगोद के ऐसे जीव जिन्होंने अभी तक अनन्तकायपणे को एक बार भी नहीं छोड़ा है, उसी में अनादिकाल से जन्म-मरण करते आ रहे हैं वे अव्यवहार राशि के जीव कहलाते हैं। जिन जीवों के एक बार भी प्रत्येक नाम कर्म का उदय हो चुका हो अर्थात् जो अनन्तकाय रूप निगोद को छोड़कर प्रत्येक काय में आ गये हों, वे सभी जीव व्यवहार राशि के कहलाते हैं। ऐसे जीव यदि बाद में निगोद में/अनन्तकाय में भी उत्पन्न हो जाये तो भी वे व्यवहार राशि के ही माने जाते हैं।
3. भव-भ्रमण का यह थोकड़ा व्यवहार राशि के जीवों की प्रधानता से बतलाया गया है। यदि ऐसा न माने तो 'अनेक बार अथवा अनन्त बार' इन शब्दों की प्रासंगिकता नहीं जमती है। जिन जीवों को अव्यवहार राशि में से निकलकर व्यवहार राशि में प्रत्येक काय में, त्रसादि पर्यायों में आये हुए यदि थोड़ा ही काल बीता है तो उनके लिए वहाँ अनेक बार (संख्यात काल बीतने वालों के लिए संख्यात बार तथा असंख्यात काल बीतने वालों के लिए असंख्यात बार) जन्म-मरण करने की बात लागू होती है तथा जिन जीवों को अनन्त काल व्यवहार राशि में आये हुए हो चुका है, ऐसे जीवों ने संसार में विविध स्थानों पर अनन्त बार जन्म-मरण कर लिया है, ऐसा समझना चाहिए।
4. आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशे णवती ग्रन्थ में व्यवहार-अव्यवहार राशि मानने के सम्बन्ध में एक अत्यन्त युक्ति संगत गणना प्रस्तुत की है-

   निगोद से प्रत्येक समय असंख्यात जीव काय परीत्त (प्रत्येक काय) में आते हैं। प्रज्ञापना सूत्र पद 18 में, जीवाजीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति आदि में निगोद की उत्कृष्ट कायस्थिति $2^{1/2}$ पुद्गल परावर्तन काल बतलाई है। निगोद के कुल जीव $2^{1/2}$ पुद्गल परावर्तनxअसंख्यात, इतनी राशि के होंगे। प्रत्येक 6 माह में एक जीव का मोक्ष जाना अनिवार्य है तो ऊपर की राशि को 6 माह से गुण किया जाय- 6 माह के समय असंख्यात = प्रतिसमय असंख्यात निकलने वाले जीव = असंख्यात x $2^{1/2}$ पुद्गल परावर्तन= इस प्रकार असंख्यात पुद्गल परावर्तन होंगे। अर्थात् असंख्यात पुद्गल परावर्तन में लोक के सारे जीव मोक्ष में चले जायेंगे। जबकि भगवती शतक 12 उद्देशक 4 में तथा अन्यत्र भी अनन्त पुद्गल परावर्तन काल तक जीवों का लोक में जन्म-मरण माना है। अतः व्यवहार-अव्यवहार राशि मानने पर ही इस समस्या का समाधान हो सकता है।

निगोद की $2^{1/2}$ पुद्गल परावर्तन काल की काय स्थिति मात्र व्यवहार राशि के जीवों की अपेक्षा से लागू होती है। कायस्थिति प्रकरण (भावनगर से प्रकाशित प्रकरण रत्न संग्रह-विक्रम संवत्-1993) में कहा भी है-

अव्ववहारिय मज्झे, भमिऊण अणंत पुग्गल परट्टे।
कह वि ववहाररासिं, संपत्तो नाह! तत्थवि य।।

5. चार अनुत्तर विमान में दो बार तथा सर्वार्थसिद्ध विमान में एक बार से अधिक जन्म नहीं होता है। दूसरे देवलोक से ऊपर देवियों के रूप में जन्म ही नहीं होता है। अतः इन स्थानों पर अनन्त बार जन्म-मरण करने का निषेध किया गया है।

श्वासोच्छ्वास का थोकड़ा

श्री प्रज्ञापना सूत्र के सातवें पद के आधार से श्वासोच्छ्वास का थोकड़ा इस प्रकार है-

नारकी के नेरिये, आभ्यंतर-ऊँचा श्वास, नीचा श्वास और बाह्य-ऊँचा श्वास, नीचा श्वास, लोहार की धमण की तरह निरन्तर लेते हैं।

भवनपति देवों में असुरकुमार देव जघन्य 7 स्तोक[1] में और उत्कृष्ट एक पक्ष से अधिक समय में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। शेष नव निकाय के देव और व्यंतर जाति के देव जघन्य 7 स्तोक और उत्कृष्ट पृथक्त्व मुहूर्त्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

ज्योतिषी देव, जघन्य और उत्कृष्ट पृथक्त्व मुहूर्त्त में।

वैमानिक देवों में प्रथम देवलोक के देव जघन्य पृथक्त्व मुहूर्त्त और उत्कृष्ट दो पक्ष में।

दूसरे देवलोक के देव जघन्य पृथक्त्व मुहूर्त्त झाझेरा, उत्कृष्ट दो पक्ष झाझेरा में।

तीसरे देवलोक के देव जघन्य 2 पक्ष, उत्कृष्ट 7 पक्ष में।

चौथे देवलोक के देव जघन्य 2 पक्ष झाझेरा, उत्कृष्ट 7 पक्ष झाझेरा में।

पाँचवें देवलोक के देव जघन्य 7 पक्ष, उत्कृष्ट 10 पक्ष में।
छठे देवलोक के देव जघन्य 10 पक्ष, उत्कृष्ट 14 पक्ष में।
सातवें देवलोक के देव जघन्य 14 पक्ष, उत्कृष्ट 17 पक्ष में।
आठवें देवलोक के देव जघन्य 17 पक्ष, उत्कृष्ट 18 पक्ष में।
नौवें देवलोक के देव जघन्य 18 पक्ष, उत्कृष्ट 19 पक्ष में।
दसवें देवलोक के देव जघन्य 19 पक्ष, उत्कृष्ट 20 पक्ष में।
ग्यारहवें देवलोक के देव जघन्य 20 पक्ष, उत्कृष्ट 21 पक्ष में।
बारहवें देवलोक के देव जघन्य 21 पक्ष, उत्कृष्ट 22 पक्ष में।
पहली ग्रैवेयक के देव जघन्य 22 पक्ष, उत्कृष्ट 23 पक्ष में।
दूसरी ग्रैवेयक के देव जघन्य 23 पक्ष, उत्कृष्ट 24 पक्ष में।
तीसरी ग्रैवेयक के देव जघन्य 24 पक्ष, उत्कृष्ट 25 पक्ष में।
चौथी ग्रैवेयक के देव जघन्य 25 पक्ष, उत्कृष्ट 26 पक्ष में।
पाँचवी ग्रैवेयक के देव जघन्य 26 पक्ष, उत्कृष्ट 27 पक्ष में।
छठी ग्रैवेयक के देव जघन्य 27 पक्ष, उत्कृष्ट 28 पक्ष में।
सातवीं ग्रैवेयक के देव जघन्य 28 पक्ष, उत्कृष्ट 29 पक्ष में।
आठवीं ग्रैवेयक के देव जघन्य 29 पक्ष, उत्कृष्ट 30 पक्ष में।
नौवीं ग्रैवेयक के देव जघन्य 30 पक्ष, उत्कृष्ट 31 पक्ष में।

1. असंख्यात समय की एक आवलिका, संख्यात आवलिका का एक श्वास, संख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास, एक श्वासोच्छ्वास काल का एक प्राण, सात प्राण काल का एक स्तोक, सात स्तोक काल का एक लव, 77 लव का एक मुहूर्त्त, 30 मुहूर्त्त की एक अहोरात्रि तथा 15 अहोरात्रि का एक पक्ष होता है।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट 33 पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्य, विमात्रा अर्थात् अनियत समय में श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

श्वासोच्छ्वास के थोकड़े सम्बन्धी ज्ञातव्य तथ्य

1. इस थोकड़े में यह बतलाया गया है कि संसारी जीव एक बार श्वासोच्छ्वास लेने के बाद दुबारा श्वासोच्छ्वास कब लेते हैं, इन दोनों के बीच में कितना अन्तर होता है। दूसरे शब्दों में श्वास लेने में कितना-कितना विरह (अन्तर) पड़ता है, उसे इस थोकड़े से जाना जा सकता है।

2. देवों में जितने सागरोपम की स्थिति होती है, उनके उतने पक्ष जितना श्वासोच्छ्वास क्रिया का विरह काल होता है।

3. श्वासोच्छ्वास का विरह (अन्तर) बाह्य श्वासोच्छ्वास की अपेक्षा समझना चाहिए।

4. देवताओं में श्वास ग्रहण की प्रक्रिया अन्तर्मुहूर्त्त तक चलती है फिर अन्तर्मुहूर्त्त तक श्वास छोड़ते हैं। उदाहरण के रूप में एक सैकण्ड तक श्वास लेते रहना फिर एक सैकण्ड तक श्वास छोड़ते रहना। अर्थात् अन्तर्मुहूर्त्त तक श्वास लेने-छोड़ने की प्रक्रिया चलती है।

5. श्वासोच्छ्वास के थोकड़े से स्पष्ट होता है कि सामान्यतः जो जीव जितने अधिक दुःखी होते हैं, उन जीवों की श्वासोच्छ्वास क्रिया उतनी ही अधिक और शीघ्र चलती है। अत्यन्त दुःखी जीवों के तो यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है।

6. जो जीव जितने अधिक सुखी होते हैं, उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तरोत्तर देरी से चलती है अर्थात् उनका श्वासोच्छ्वास और विरहकाल अधिक-अधिक होता है, क्योंकि श्वासोच्छ्वास क्रिया अपने आप में दुःख रूप होती है। यह बात अपने अनुभव से भी सिद्ध है तथा शास्त्र भी इस बात का समर्थन करते हैं।

7. श्वासोच्छ्वास मात्र घ्राणेन्द्रिय (नासिका) से ही नहीं लिया जाता वरन् स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय (मुख) और घ्राणेन्द्रिय इन तीनों से लिया जाता है।

8. एकेन्द्रिय जीव स्पर्शनेन्द्रिय से ही श्वास लेते तथा छोड़ते हैं। बेइन्द्रिय जीव स्पर्शन तथा मुख से श्वास लेते छोड़ते हैं। तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव तीनों इन्द्रियों से (स्पर्शन, मुख तथा घ्राण) श्वास लेते तथा छोड़ते हैं।

9. श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया हर गति, जाति आदि के जीवों में अलग- अलग प्रकार से होती है।

श्रमण–निर्ग्रन्थों के सुख की तुल्यता का थोकड़ा

(चौदहवें शतक का नववाँ उद्देशक)

श्री भगवती सूत्र के 14 वें शतक के नवमे उद्देशक में 'श्रमण- निर्ग्रन्थों के सुख की तुल्यता' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं-

अहो भगवन्! जो श्रमण-निर्ग्रन्थ आर्यपने-पापकर्म रहितपने विचरते हैं, उनका सुख कैसा होता है?

1. हे गौतम! एक मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख वाणव्यन्तर देवों के सुख से बढ़ कर होता है।
2. दो मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख असुरेन्द्र के सिवाय बाकी भवनपति देवों (नव निकाय के देवों) के सुख से बढ़ कर होता है,
3. तीन मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख असुरकुमारों से बढ़कर होता है।
4. चार मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख ग्रह, नक्षत्र, तारा इन तीन ज्योतिषी देवों के सुख से बढ़ कर होता है।
5. पाँच मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख सूर्य चन्द्र ज्योतिषी देवों के सुख से बढ़ कर होता है।
6. छह मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख सौधर्म और ईशान (1,2) के देवों के सुख से बढ़कर होता है।
7. सात मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख सनत्कुमार और माहेन्द्र (3,4) देवलोक के देवों के सुख से बढ़ कर होता है।
8. आठ मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख ब्रह्मलोक व लांतक (5,6) देवलोक के देवों के सुख से भी बढ़कर होता है।
9. नौ मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख महाशुक्र और सहस्रार (7,8) देवलोक के देवों के सुख से बढ़ कर होता है।
10. दस मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण निर्ग्रन्थ का सुख आणत, प्राणत, आरण और अच्युत (9,10,11,12) देवलोकों के देवों के सुख से बढ़ कर होता है।
11. ग्यारह मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख नवग्रैवेयक देवों के सुख से बढ़ कर होता है।
12. बारह मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख पाँच अनुत्तर विमान के देवों के सुख से बढ़ कर होता है।

इसके बाद अधिकाधिक शुद्ध (शुद्ध और शुद्धतर) परिणाम वाला होकर सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

ज्ञातव्य :-

1. भगवती सूत्र शतक 14 उद्देशक 9 में श्रमण निर्ग्रन्थों के सुख के लिए 'तेजो लेश्या' शब्द का प्रयोग किया गया है। क्योंकि तेजो लेश्या प्रशस्त लेश्या है, वह सुख का कारण है।
2. जे नम्र वृत्ति वाला, अचपल, माया से रहित, कुतुहल से रहित, विनीत, दान्त, स्वाध्यायादि से समाधि सम्पन्न और उपधानवान है, प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी है, पाप भीरू है, प्राणिमात्र का हितैषी है ऐसा साधु तेजो लेश्या रूप सुख की अनुभूति करने वाला होता है।
3. विशेष आत्म विशुद्धि होने से वह श्रमण-निर्ग्रन्थ निरतिचार संयम का पालन करने वाला होता है। अतएव वह पद्म लेश्या वाला-शुक्ल लेश्या वाला तथा इससे आगे वह परम शुक्ल (परम सुखी) हो जाता है तत्पश्चात् वह सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हो जाता है।
4. देवलोकों में जैसे-जैसे ऋद्धि, प्रभा, लेश्या, स्थिति आदि बढ़ती जाती हैं। वैसे-वैसे वहाँ के देवों में व्याकुलता, चंचलता, कौतुकता, उत्सुकता आदि कम-कम होती जाती हैं तथा उनके सुख रूप लेश्या बढ़ती जाती है। ठीक इसी प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थों के निरतिचार संयम पर्याय में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, वैसे-वैसे उनका संयम-सुख भी उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है।
5. यह थोकड़ा मध्यम दर्जे के निरतिचार संयम पर्याय का पालन करने वाले श्रमण निर्ग्रन्थों की अपेक्षा से समझना चाहिए क्योंकि अनेक साधु देशोन करोड़ पूर्व वर्षों तक संयम पर्याय का पालन करके आराधक होने पर भी प्रथम देवलोक में ही जाते हैं, जबकि भरत महाराजा, मरूदेवी माता आदि ने तो अन्तर्मुहूर्त में ही कैवल्य पर्याय को प्राप्त कर लिया। गजसुकुमाल मुनि आदि ने एक दिन के संयम पर्याय में ही कैवल्य पर्याय को प्राप्त कर शाश्वत सिद्धि रूप सुख को प्राप्त कर लिया था।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : तृतीय – जैनागम स्तोक वारिधि (परीक्षा 07 जनवरी, 2018)

समय : 3 घण्टे अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1 = (10)

(a) नव तत्त्वों में रूपी तत्त्व है -

(क) जीव (ख) संवर

(ग) मोक्ष (घ) पुण्य (घ)

(b) 'अनित्य भावना' भाई थी -

(क) भरत चक्रवर्ती ने (ख) हरिकेशी मुनि ने

(ग) अर्जुन अणगार ने (घ) मृगापुत्र जी ने (क)

(c) 'ऊँचे स्वर से रोना-चिल्लाना' ध्यान का लक्षण है -

(क) रौद्रध्यान का (ख) आर्त्तध्यान का

(ग) धर्मध्यान का (घ) शुक्लध्यान का (ख)

(d) पाप कर्म भोगने की प्रकृतियाँ हैं -

(क) 18 (ख) 42

(ग) 82 (घ) 34 (ग)

(e) किस कारण से जीव भारी होता है-

(क) पाप के सेवन से (ख) संवर के सेवन से

(ग) पुण्य के सेवन से (घ) लोभ के सेवन से (क)

(f) जीवों का भवसिद्धिपना है-

(क) परिणाम से (ख) स्वभाव से

(ग) कर्मादि से (घ) इनमें से कोई नहीं (ख)

(g) यह लोक कितना बड़ा है ?

(क) संख्यात कोडा कोडी योजन (ख) संख्यातासंख्यात कोडा कोडी योजन

(ग) असंख्याता कोडा कोडी योजना (घ) इनमें से कोई नहीं (ग)

(h) श्वासोच्छवास का थोकड़ा लिया गया है-

(क)प्रज्ञापना सूत्र से (ख) भगवती सूत्र से

(ग) अनुयोग द्वार सूत्र से (घ) उत्तराध्ययन सूत्र से (क)

(i) चार अनुत्तर विमान के देव श्वासोच्छवास लेते हैं-

(क)जघन्य 24 पक्ष उत्कृष्ट 25 पक्ष में (ख) जघन्य 31 पक्ष उत्कृष्ट 33 पक्ष में

(ग) अनियत समय में (घ) जघन्य 17 पक्ष उत्कृष्ट 18 पक्ष में (ख)

(j) किस श्रमण निर्ग्रन्थ का सुख ग्रह नक्षत्र तारा इन तीन ज्योतिषी देवों के सुख से बढ़कर होता है-

(क) दो मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण का

(ख) छह मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण का

(ग) चार मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण का

(घ) पाँच मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण का (ग)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1 = (10)**

(a) साधरण, वनस्पति का भेद है। (हाँ)

(b) बिना उपयोग के लापरवाही से लगने वाली क्रिया अणाभोगवत्तिया क्रिया है। (हाँ)

(c) संसार भावना नमिराज ऋषि ने भाई थी। (नहीं)

(d) जिसे प्रायश्चित्त का ज्ञान नहीं है, ऐसे अगीतार्थ मुनि के पास आलोचना करे तो छण्णं प्रायश्चित्त का दोष है। (नहीं)

(e) 18 पापों का आचरण करके जीव कर्मों की स्थिति बढ़ाता है। (हाँ)

(f) अव्यवहार राशि में ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं जिन्हें कभी वहाँ से निकलने का अवसर ही नहीं मिल पाता। (हाँ)

(g) चार अनुत्तर विमान में जीव दो बार से अधिक जन्म नहीं लेता है। (हाँ)

(h) देवताओं में अन्तर्मुहूर्त तक श्वास लेने छोड़ने की प्रक्रिया चलती रहती है। (हाँ)

(i) श्वासोच्छवास की प्रक्रिया हर गति जाति आदि जीवों में एक समान होती है। (नहीं)

(j) बारह मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण निर्ग्रन्थ का सुख पाँच अनुत्तर विमान के देवों के सुख से बढ़कर होता है। (हाँ)

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1 = (10)**

(a) मैं प्रायश्चित्त का वह दोष हूँ, जो दूसरों को सुनाने के लिए जोर-जोर से बोलकर आलोचना करता हूँ। सद्दाउलगं

(b) मैं ज्ञान विनय का पाँचवाँ भेद हूँ। केवलज्ञान विनय

(c) मैने लोक भावना भाई थी। शिवराज ऋषि

(d) मेरा सेवन करके जीव संसार सागर में रूलता है। अठारह पाप का सेवन

(e) मैं वह राशि हूँ जिसके सभी जीव अवश्य मोक्ष में जाते हैं। व्यवहार राशि

(f) मैने देवानंदा की तरह दीक्षा लेकर और केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गति को प्राप्त किया। जयंती श्रमणोपासिका

(g) भव भ्रमण करता हुआ जीव मेरे स्थान पर अनन्त बार उत्पन्न नहीं हुआ है। पाँच अनुत्तर विमान

(h) मेरा श्वासोच्छ्वास जघन्य 28 पक्ष उत्कृष्ट 29 पक्ष में होता है। सातवीं ग्रैवेयक के देव

(i) मेरा सुख सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के देवों के सुख से बढ़कर होता है। सात मास की दीक्षा पर्याय वाले साधु

(j) मेरा सुख असुर कुमारों से बढ़कर होता है। तीन मास की दीक्षा पर्याय वाले साधु

प्र.4 एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए। 14x2 = (28)

(a) नवतत्त्वों में कौन से तत्त्व जानने योग्य, छोड़ने योग्य, ग्रहण करने योग्य है ?

उ. नव तत्त्वों में से दो तत्त्व- जीव, अजीव जानने योग्य है, तीन तत्त्व-पाप, आश्रव और बंध छोड़ने योग्य हैं और चार तत्त्व-पुण्य, संवर, निर्जरा और मोक्ष ग्रहण करने योग्य हैं।

(b) पन्द्रह परमाधामी देवों के नाम लिखिए।

उ. पन्द्रह परमाधामी देव- अम्ब, अम्बरीष, श्याम, शबल, रौद्र, महारौद्र, काल, महाकाल, असिपत्र, धनु, कुम्भ, वालुय, वैतरणी, खरस्वर, महाघोष।

(c) रस परित्याग के 9 भेदों के नाम लिखिए।

उ. 1. णिव्वियतिए 2. पणीअ रस परिच्चाए 3. आयंबिलए 4. आयामसित्थ भोई
5. अरसाहारे 6. विरसाहारे 7. अंताहारे 8. पंताहारे 9. लूहाहारे।

(d) 'विपरिणामानुप्रेक्षा' का अर्थ लिखिए।

उ. वस्तुओं का प्रतिक्षण विविध रूपों में विपरिणमन-परिवर्तन होता रहता है, इसका चिन्तन करना।

(e) प्रायश्चित्त देने वाले के अपरिश्रावी गुण को समझाइए।

उ. आलोचित दोषों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करने वाला।

(f) आर्त्तध्यान के चार लक्षण लिखिए।

उ. 1. ऊचे स्वर से रोना- चिल्लाना। 2. दीनपना लाना।
3. टप-टप आँसू गिराना। 4. बार-बार विलाप करना।

(g) प्रकृति बंध किसे कहते हैं?

उ. जीव के साथ सम्बद्ध कर्म-पुद्गलों में ज्ञान को आवरण करने, दर्शन को रोकने, सुख दुःख देने आदि अलग-अलग स्वभाव का होना 'प्रकृति बंध' कहलाता है।

(h) अतीर्थसिद्ध को परिभाषित कीजिए।

तीर्थ की स्थापना होने से पहले अथवा तीर्थ का विच्छेद होने पर जो सिद्ध होते हैं, वे अतीर्थ सिद्ध

कहलाते हैं, जैसे- मरूदेवी माता आदि।

(i) किस कारण से जीव संसार को बढ़ता है और किस आचरण से संसार को घटाता है ?

उ. 18 पापों के सेवन से जीव संसार बढाता है और 18 पापों के विरमण (निवृत होकर) से जीव संसार घटाता है।

(j) अधर्मी जीव सोते हुए अच्छे क्यों बताए गए हैं ?

उ. क्योंकि वे किसी प्राण, भूत, जीव, सत्व को दुःख नहीं दे पाते, आत्मा को अधर्म में नहीं जोड़ते।

(k) अहो भगवन्! क्या यह जीव सब जीवों के मातापने भाईपने पुत्रपने उत्पन्न हुआ है ?

उ. है गौतम! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुआ है।

(l) जिन जीवों के एक बार भी प्रत्येक नाम कर्म का उदय हो चुका है, वे किस राशि के जीव कहलाते हैं?

उ. व्यवहार राशि के।

(m) ज्योतिषि देवों का श्वासोच्छ्वास लिखिए।

उ. जघन्य और उत्कृष्ट- पृथक्त्व मुहूर्त्त।

(n) छठे देवलोक के देवों का श्वासोच्छ्वास लिखिए।

उ. जघन्य 10 पक्ष, उत्कृष्ट 14 पक्ष में।

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर तीन-चार वाक्यों में लिखिए : - **14x3=(42)**

(a) सोलह वाणव्यन्तर व दस त्रिजृम्भक के नाम लिखिए।

सोलह वाणव्यन्तर- पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गंधर्व, आणपन्ने, पाणपन्ने, इसिवाई, भूयवाई, कन्दे, महाकन्दे, कुहुण्डे और पयंगदेव।

दस त्रिजृम्भक- अन्न जृम्भक, पान जृम्भक, लयन जृम्भक, शयन जृम्भक, वस्त्र जृम्भक, फल जृम्भक, पुष्प जृम्भक, फल-पुष्प जृम्भक, विद्या जृम्भक और अग्नि जृम्भक

(b) दस प्रकार की प्रतिसेवना के नाम व प्रथम चार प्रतिसेवना के अर्थ लिखिए।

1. दर्प	2. प्रमाद	3. अनाभोग	4. आतुर	5.आपत्ति
6. शंकित	7. सहसाकार	8. भय	9. प्रद्वेष	10. विमर्श

1. दर्प- अहंकारवश संयम की विराधना करना।

2. प्रमाद-प्रमाद के वशीभूत होकर दोष लगाना।

3. अनाभोग- बिना उपयोग के अज्ञानवश संयम में दोष लगाना।

4. आतुर- भूखादि से पीड़ित होकर दोष लगाना।

(c) प्रशस्तकाय विनय व अप्रशस्तकाय विनय के भेदों के नाम लिखिए।

उ. प्रशस्तकाय विनय के सात भेद- उपयोगपूर्वक सावधानी के साथ- 1. जाना 2. खड़ा होना 3. बैठना 4. सोना 5. उल्लंघन करना 6. बार-बार उल्लंघन करना और 7 सभी इन्द्रियों और काययोग की प्रवृत्ति करना।

अप्रशस्तकाय विनय के सात भेद- 1. बिना उपयोग के असावधानी के साथ जाना 2. खड़ा रहना 3. बैठना 4. सोना 5. उल्लंघन करना 6. बार-बार उल्लंघन करना और 7 सभी इन्द्रियों और काययोग की प्रवृत्ति करना।

(d) शुक्ल ध्यान के चार लक्षणों का वर्णन कीजिए।

उ. 1. विवेक- शरीर से आत्मा को भिन्न समझना और आत्मा को सभी संयोगों से भिन्न समझना।

2. व्युत्सर्ग- निःसंग यानि संग (आसक्ति) रहित होने से शरीर और उपधि का त्याग करना।

3. अव्यथ- देवादिक का उपसर्ग होने पर भी भयभीत होकर विचलित न होना।

4. असंमोह- देवादि की माया से मोहित न होना और सूक्ष्म पदार्थ विषयक चिन्तन में न उलझना।

(e) मोक्ष तत्त्व के भाव द्वार व अल्प बहुत्व द्वार को समझाइए।

उ. भाव द्वार- सिद्धों में क्षायिक और पारिणामिक ये दो भाव पाये जाते हैं। क्षायिक भाव में केवल ज्ञान, केवल दर्शन और क्षायिक सम्यक्त्व पाये जाते हैं। पारिणामिक भाव में जीवत्व पाया जाता है।

अल्पबहुत्व द्वार- सबसे थोड़े नपुंसक लिंग सिद्ध हैं। स्त्रीलिंग सिद्ध उनसे संख्यात गुणा अधिक है और उनसे भी पुरुष लिंग सिद्ध संख्यात गुणा है। कारण यह है कि नपुंसक लिंग वाले एक समय में उत्कृष्ट दस मोक्ष जा सकते हैं। स्त्री लिंग में एक समय में उत्कृष्ट बीस और पुरूष लिंग से एक समय में 108 मोक्ष जा सकते हैं।

(f) बुद्धबौधित सिद्ध, एकसिद्ध, अनेकसिद्ध को समझाइए।

उ. बुद्धबौधित सिद्ध- गुरु के उपदेश से बोध प्राप्त कर, दीक्षित होकर जो मोक्ष में जाते हैं, इन्हें बुद्ध बोधित सिद्ध कहते हैं, जैसे- जम्बू स्वामी।

एकसिद्ध- एक समय में अकेला ही मोक्ष जाने वाला जीव एक सिद्ध कहलाता है, जैसे-महावीर स्वामी।

अनेकसिद्ध- एक समय में एक से अधिक यानि दो से लेकर एक सौ आठ तक मोक्ष में जाने वाले जीव अनेक सिद्ध कहलाते है, जैसे- भगवान ऋषभदेव।

(g) लोक भव सिद्धिक जीवों से कभी खाली नहीं होता, कैसे? दृष्टांत सहित समझाइए।

उ. जैसे आकाश की श्रेणी अनादि अनन्त हैं। उसमें से एक-एक परमाणु खण्ड जितना प्रदेश, एक-एक समय से निकाले। इस प्रकार निकालते-निकालते अनन्ती अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी पूरी हो जाय, तो भी यह आकाश श्रेणी खाली नहीं होती। इसी प्रकार सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष जायेंगे तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से कभी भी खाली नहीं होगा।

(h) व्यवहार राशि के सभी जीव मोक्ष में जाने पर भी व्यवहार राशि में जीव बराबर बने रहते हैं, कैसे? दृष्टांत सहित समझाइए।

उ. जैसे भविष्यत् काल वर्तमान में आता है और एक समय बाद भूत में चला जाता है। यह क्रम अनादिकाल से चल रहा है और अनन्त काल तक चलेगा। किन्तु फिर भी भविष्यत्काल का कभी अन्त नहीं होगा।इसी प्रकार व्यवहार राशि में जीव कभी कम नहीं होंगे। अव्यवहार राशि से आते रहेंगे।

(i) श्रोत्रेन्द्रिय के वश में हुआ जीव कैसे कर्म बांधता है ?

उ. आयुष्य कर्म को छोड़कर बाकी सात कर्मों की प्रकृति यदि ढीली हो तो गाढ़ी-दृढ करता है। थोड़े काल की स्थिति हो तो बहुत काल की स्थिति करता है। मन्द रस वाली हो तो तीव्र रस वाली करता है। आयुष्य बांधता है अथवा नहीं भी बांधता है। असातावेदनीय कर्म बार-बार बांधता है और चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

(j) संसार में ऐसी कोई जगह नहीं बची, जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण नहीं किया हो। इस बात की पुष्टि करने वाले कोई चार कारण लिखिए।

उ. 1. लोक शाश्वत है। (विनाशी होने पर संसार में सभी जगहों पर जन्म-मरण की बात घटित नहीं हो सकती)

2. लोक अनादि है। (लोक को सादि-आदि सहित मानने पर भी सभी जगह जन्म-मरण की बात घटित नहीं हो सकती)

3.जीव नित्य है।(यदि जीव अनित्य हो तो भी सभी जगहों पर जन्म-मरण की बात घटित नहीं हो सकती)

4. कर्मों की बहुलता है। (यदि कर्मों की अल्पता हो तो भी सब जगह जन्म-मरण नहीं हो सकता)

5. जन्म-मरण की बहुलता है। (यदि जन्म-मरण की अल्पता हो तो भी सभी जगह जन्म-मरण नहीं हो सकता)

(k) एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों की श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया बताइए।

उ. एकेन्द्रिय जीव स्पर्शनेन्द्रिय से ही श्वास लेते तथा छोड़ते हैं। बेइन्द्रिय जीव स्पर्शन तथा मुख से श्वास लेते छोड़ते हैं। तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव तीनों इन्द्रियों से(स्पर्शन,मुख तथा घ्राण)श्वास लेते तथा छोड़ते हैं।

(l) देवताओं में श्वास ग्रहण की प्रक्रिया उदाहरण सहित बताइए।

उ. देवताओं में श्वास ग्रहण की प्रक्रिया अन्तर्मुहूर्त्त तक चलती है फिर अन्तर्मुहूर्त्त तक श्वास छोड़ते हैं। उदाहरण के रूप में एक सैकण्ड तक श्वास लेते रहना फिर एक सैकण्ड तक श्वास छोड़ते रहना। अर्थात् अन्तर्मुहूर्त्त तक श्वास लेने-छोड़ने की प्रक्रिया चलती है।

(m) श्रमण निर्ग्रन्थों के निरतिचार संयम पर्याय का पालन करने से शाश्वत सिद्धि रूप सुख को प्राप्त होता है, कैसे? स्पष्ट कीजिए।

उ. विशेष आत्म विशुद्धि होने से वह श्रमण-निर्ग्रन्थ निरतिचार संयम का पालन करने वाला होता है। अतएव वह पद्म लेश्या वाला-शुक्ल लेश्या वाला तथा इससे आगे वह परम शुक्ल (परम सुखी) हो जाता है। तत्पश्चात् वह सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हो जाता है।

(n) दस मास, ग्यारह मास, बारह मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण निर्ग्रन्थों का सुख किनसे बढ़कर होता है? लिखिए।

उ. दस मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण निर्ग्रन्थ का सुख आणत, प्राणत, आरण और अच्युत (9,10,11,12) देवलोकों के देवों के सुख से बढ़कर होता है।

ग्यारह मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख नवग्रैवेयक देवों के सुख से बढ़कर होता है।

बारह मास की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख पाँच अनुत्तर विमान के देवों के सुख से बढ़कर होता है।